ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

स्त्रीपर्व

(जलप्रदानिकपर्व)

प्रथमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विलाप और संजयका उनको सान्त्वना देना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उनकी लीलाओं-का संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

जनमेजय उवाच

हते दुर्योधने चैव हते सैन्ये च सर्वशः ।
धृतराष्ट्रो महाराज श्रुत्वा किमकरोन्मुने ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! दुर्योधन और उसकी सारी सेनाका संहार हो जानेपर महाराज धृतराष्ट्रने जब इस समाचारको सुना तो क्या किया ? ॥ १ ॥

तथैव कौरवो राजा धर्मपुत्रो महामनाः ।
कृपप्रभृतयश्चैव किमकुर्वत ते त्रयः ॥ २ ॥

इसी प्रकार कुरुवंशी राजा महामनस्वी धर्मपुत्र युधिष्ठिरने तथा कृपाचार्य आदि तीनों महारथियोंने भी इसके बाद क्या किया ? ॥ २ ॥

अश्वत्थाम्नः श्रुतं कर्म शापादन्योन्यकारितात् ।
वृत्तान्तमुत्तरं ब्रूहि यदभाषत संजयः ॥ ३ ॥

अश्वत्थामाको श्रीकृष्णसे और पाण्डवोंको अश्वत्थामासे जो परस्पर शाप प्राप्त हुए थे, वहाँतक मैंने अश्वत्थामाकी करतूत सुन ली । अब उसके बादका वृत्तान्त बताइये कि संजयने धृतराष्ट्रसे क्या कहा ? ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

हते पुत्रशते दीनं छिन्नशाखमिव द्रुमम् ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! अपने सौ पुत्रोंके मारे जानेपर राजा धृतराष्ट्रकी दशा वैसी ही दयनीय हो गयी, जैसे समस्त शाखाओंके कट जानेपर वृक्षकी हो जाती है । वे पुत्रोंके शोकसे संतप्त हो उठे ॥ ४ ॥

ध्यानमूकत्वमापन्नं चिन्तया समभिप्लुतम् ।
अभिगम्य महाराज संजयो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥

महाराज ! उन्हीं पुत्रोंका ध्यान करते-करते वे मौन हो गये, चिन्तामें डूब गये । उस अवस्थामें उनके पास जाकर संजयने इस प्रकार कहा—॥ ५ ॥

किं शोचसि महाराज नास्ति शोके सहायता ।
अक्षौहिण्यो हताश्चाष्टौ दश चैव विशाम्पते ॥ ६ ॥

'महाराज ! आप क्यों शोक कर रहे हैं ? इस शोकमें जो आपकी सहायता कर सके, आपका दुःख बँटा ले, ऐसा भी तो कोई नहीं बच गया है । प्रजानाथ ! इस युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ मारी गयी हैं ॥ ६ ॥

निर्जनेयं वसुमती शून्या सम्प्रति केवला ।
नानादिग्भ्यः समागम्य नानादेश्या नराधिपाः ॥ ७ ॥
सहैव तव पुत्रेण सर्वे वै निधनं गताः ।

'इस समय यह पृथ्वी निर्जन होकर केवल सूनी-सी दिखायी देती है । नाना देशोंके नरेश विभिन्न दिशाओंसे आकर आपके पुत्रके साथ ही सब-के-सब कालके गालमें चले गये हैं ॥ ७½ ॥

पितॄणां पुत्रपौत्राणां ज्ञातीनां सुहृदां तथा ।
गुरूणां चानुपूर्व्येण प्रेतकार्याणि कारय ॥ ८ ॥

'राजन् ! अब आप क्रमशः अपने चाचा, ताऊ, पुत्र, पौत्र, भाई-बन्धु, सुहृद् तथा गुरुजनोंके प्रेतकार्य सम्पन्न कराइये' ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं पुत्रपौत्रवधार्दितः ।
पपात भुवि दुर्धर्षो वाताहत इव द्रुमः ॥ ९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर ! संजयकी यह करुणाजनक बात सुनकर बेटों और पोतोंके वधसे व्याकुल हुए दुर्जय राजा धृतराष्ट्र आँधीके उखाड़े हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

हतपुत्रो हतामात्यो हतसर्वसुहृज्जनः ।
दुःखं नूनं भविष्यामि विचरन् पृथिवीमिमाम् ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मेरे पुत्र, मन्त्री और समस्त सुहृद् मारे गये । अब तो अवश्य ही मैं इस पृथ्वीपर भटकता हुआ केवल दुःख-ही-दुःख भोगूँगा ॥ १० ॥

किं नु बन्धुविहीनस्य जीवितेन ममाद्य वै ।
लूनपक्षस्य इव मे जराजीर्णस्य पक्षिणः ॥ ११ ॥

जिसकी पाँखें काट ली गयी हों, उस जराजीर्ण पक्षीके समान बन्धु-बान्धवोंसे हीन हुए मुझ वृद्धको अब इस जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ११ ॥

हृतराज्यो हतबन्धुर्हृतचक्षुश्च वै तथा ।
न भ्राजिष्ये महाप्राज्ञ क्षीणरश्मिरिवांशुमान् ॥ १२ ॥

महामते ! मेरा राज्य छिन गया, बन्धु-बान्धव मारे गये और आँखें तो पहलेसे ही नष्ट हो चुकी थीं । अब मैं क्षीण किरणोंवाले सूर्यके समान इस जगत्में प्रकाशित नहीं होऊँगा ॥

न कृतं सुहृदां वाक्यं जामदग्न्यस्य जल्पतः ।
नारदस्य च देवर्षेः कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ १३ ॥

मैंने सुहृदोंकी बात नहीं मानी, जमदग्निनन्दन परशुराम, देवर्षि नारद तथा श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास सबने हितकी बात बतायी थी, पर मैंने किसीकी नहीं सुनी ॥ १३ ॥

सभामध्ये तु कृष्णेन यच्छ्रेयोऽभिहितं मम ।
अलं वैरेण ते राजन् पुत्रः संगृह्यतामिति ॥ १४ ॥
तच्च वाक्यमकृत्वाहं भृशं तप्यामि दुर्मतिः ।

श्रीकृष्णने सारी सभाके बीचमें मेरे भलेके लिये कहा था—'राजन् ! वैर बढ़ानेसे आपको क्या लाभ है ? अपने पुत्रोंको रोकिये ।' उनकी उस बातको न मानकर आज मैं अत्यन्त संतप्त हो रहा हूँ । मेरी बुद्धि बिगड़ गयी थी ॥ १४½ ॥

न हि श्रोतास्मि भीष्मस्य धर्मयुक्तं प्रभाषितम् ॥ १५ ॥
दुर्योधनस्य च तथा वृषभस्येव नर्दतः ।

हाय ! अब मैं भीष्मजीकी धर्मयुक्त बात नहीं सुन सकूँगा । साँड़के समान गर्जनेवाले दुर्योधनके वीरोचित वचन भी अब मेरे कानोंमें नहीं पड़ सकेंगे ॥ १५½ ॥

दुःशासनवधं श्रुत्वा कर्णस्य च विपर्ययम् ॥ १६ ॥
द्रोणसूर्योपरागं च हृदयं मे विदीर्यते ।

दुःशासन मारा गया, कर्णका विनाश हो गया और द्रोणरूपी सूर्यपर भी ग्रहण लग गया, यह सब सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है ॥ १६½ ॥

न स्मराम्यात्मनः किंचित् पुरा संजय दुष्कृतम् ॥ १७ ॥
यस्येदं फलमद्येह मया मूढेन भुज्यते ।

संजय ! इस जन्ममें पहले कभी अपना किया हुआ कोई ऐसा पाप मुझे नहीं याद आ रहा है, जिसका मुझ मूढ़को आज यहाँ यह फल भोगना पड़ रहा है ॥ १७½ ॥

नूनं व्यपकृतं किंचिन्मया पूर्वेषु जन्मसु ॥ १८ ॥
येन मां दुःखभागेषु धाता कर्मसु युक्तवान् ।

अवश्य ही मैंने पूर्वजन्मोंमें कोई ऐसा महान् पाप किया है, जिससे विधाताने मुझे इन दुःखमय कर्मोंमें नियुक्त कर दिया है ॥ १८½ ॥

परिणामश्च वयसः सर्वबन्धुक्षयश्च मे ॥ १९ ॥
सुहृन्मित्रविनाशश्च दैवयोगादुपागतः ।
कोऽन्योऽस्ति दुःखिततरो मत्तोऽन्यो हि पुमान् भुवि ॥

अब मेरा बुढ़ापा आ गया, सारे बन्धु-बान्धवोंका विनाश हो गया और दैववश मेरे सुहृदों तथा मित्रोंका भी अन्त हो गया । भला, इस भूमण्डलमें अब मुझसे बढ़कर महान् दुखी दूसरा कौन होगा ? ॥ १९-२० ॥

तन्मामद्यैव पश्यन्तु पाण्डवाः संशितव्रताः ।
विवृतं ब्रह्मलोकस्य दीर्घमध्वानमास्थितम् ॥ २१ ॥

इसलिये कठोर व्रतका पालन करनेवाले पाण्डवलोग मुझे आज ही ब्रह्मलोकके खुले हुए विशाल मार्गपर आगे बढ़ते देखें ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य लालप्यमानस्य बहुशोकं वितन्वतः ।
शोकापहं नरेन्द्रस्य संजयो वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र जब बहुत शोक प्रकट करते हुए बारंबार विलाप करने लगे, तब संजयने उनके शोकका निवारण करनेके लिये यह बात कही—॥ २२ ॥

शोकं राजन् व्यपनुद श्रुतास्ते वेदनिश्चयाः ।
शास्त्रागमाश्च विविधा वृद्धेभ्यो नृपसत्तम ॥ २३ ॥
सृंजये पुत्रशोकार्ते यदूचुर्मुनयः पुरा ।

'नृपश्रेष्ठ राजन् ! आपने बड़े-बूढ़ोंके मुखसे वे वेदोंके सिद्धान्त, नाना प्रकारके शास्त्र एवं आगम सुने हैं, जिन्हें पूर्वकालमें मुनियोंने राजा सृंजयको पुत्रशोकसे पीडित होनेपर सुनाया था, अतः आप शोक त्याग दीजिये ॥ २३½ ॥

यथा यौवनजं दर्पमास्थिते तं सुते नृप ॥ २४ ॥
न त्वया सुहृदां वाक्यं ब्रुवतामवधारितम् ।

'नरेश्वर ! जब आपका पुत्र दुर्योधन जवानीके घमंडमें आकर मनमाना बर्ताव करने लगा, तब आपने हितकी बात बतानेवाले सुहृदोंके कथनपर ध्यान नहीं दिया ॥ २४½ ॥

स्वार्थश्च न कृतः कश्चिल्लुब्धेन फलगृद्धिना ॥ २५ ॥
असिनैवैकधारेण स्वबुद्ध्या तु विचेष्टितम् ।
प्रायशोऽवृत्तसम्पन्नाः सततं पर्युपासिताः ॥ २६ ॥

उसके मनमें लोभ था और वह राज्यका सारा लाभ स्वयं ही भोगना चाहता था, इसलिये उसने दूसरे किसीको अपने स्वार्थका सहायक या साझीदार नहीं बनाया । एक ओर धारवाली तलवारके समान अपनी ही बुद्धिसे सदा काम लिया । प्रायः जो अनाचारी मनुष्य थे, उन्हींका निरन्तर साथ किया ॥ २५-२६ ॥

यस्य दुःशासनो मन्त्री राधेयश्च दुरात्मवान् ।
शकुनिश्चैव दुष्टात्मा चित्रसेनश्च दुर्मतिः ॥ २७ ॥
शल्यश्च येन वै सर्वं शल्यभूतं कृतं जगत् ।

'दुःशासन, दुरात्मा राधापुत्र कर्ण, दुष्टात्मा शकुनि, दुर्बुद्धि चित्रसेन तथा जिन्होंने सारे जगत्को शल्यमय (कण्टकाकीर्ण) बना दिया था, वे शल्य—ये ही लोग दुर्योधनके मन्त्री थे ॥

कुरुवृद्धस्य भीष्मस्य गान्धार्या विदुरस्य च ॥ २८ ॥
द्रोणस्य च महाराज कृपस्य च शरद्वतः।
कृष्णस्य च महाबाहो नारदस्य च धीमतः ॥ २९ ॥
ऋषीणां च तथान्येषां व्यासस्यामिततेजसः।
न कृतं तेन वचनं तव पुत्रेण भारत ॥ ३० ॥

'महाराज ! महाबाहो ! भरतनन्दन ! कुरुकुलके ज्ञान-वृद्ध पुरुष भीष्म, गान्धारी, विदुर, द्रोणाचार्य, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य, श्रीकृष्ण, बुद्धिमान् देवर्षि नारद, अमिततेजस्वी वेदव्यास तथा अन्य महर्षियोंकी भी बातें आपके पुत्रने नहीं मानीं ॥ २८-३० ॥

न धर्मः सत्कृतः कश्चिन्नित्यं युद्धमभीप्सता।
अल्पबुद्धिरहंकारी नित्यं युद्धमिति ब्रुवन्।
क्रूरो दुर्मर्षणो नित्यमसंतुष्टश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥

'वह सदा युद्धकी ही इच्छा रखता था; इसलिये उसने कभी किसी धर्मका आदरपूर्वक अनुष्ठान नहीं किया। वह मन्दबुद्धि और अहङ्कारी था; अतः नित्य युद्ध-युद्ध ही चिल्लाया करता था। उसके हृदयमें क्रूरता भरी थी। वह सदा अमर्षमें भरा रहनेवाला, पराक्रमी और असंतोषी था (इसीलिये उसकी दुर्गति हुई है) ॥ ३१ ॥

श्रुतवानसि मेधावी सत्यवांश्चैव नित्यदा।
न मुह्यन्तीदृशाः सन्तो बुद्धिमन्तो भवादृशाः ॥ ३२ ॥

'आप तो शास्त्रोंके विद्वान्, मेधावी और सदा सत्यमें तत्पर रहनेवाले हैं। आप-जैसे बुद्धिमान् एवं साधु पुरुष मोहके वशीभूत नहीं होते हैं ॥ ३२ ॥

न धर्मः सत्कृतः कश्चित् तव पुत्रेण मारिष।
क्षपिताः क्षत्रियाः सर्वे शत्रूणां वर्धितं यशः ॥ ३३ ॥

'मान्यवर नरेश ! आपके उस पुत्रने किसी भी धर्मका सत्कार नहीं किया। उसने सारे क्षत्रियोंका संहार करा डाला और शत्रुओंका यश बढ़ाया ॥ ३३ ॥

मध्यस्थो हि त्वमप्यासीर्न क्षमं किञ्चिदुक्तवान्।
दुर्धरेण त्वया भारस्तुलया न समं धृतः ॥ ३४ ॥

'आप भी मध्यस्थ बनकर बैठे रहे, उसे कोई उचित सलाह नहीं दी। आप दुर्धर्ष वीर थे—आपकी बात कोई टाल नहीं सकता था, तो भी आपने दोनों ओरके बोझेको समभावसे तराजूपर रखकर नहीं तौला ॥ ३४ ॥

आदावेव मनुष्येण वर्तितव्यं यथाक्षमम्।
यथा नातीतमर्थं वै पश्चात्तापेन युज्यते ॥ ३५ ॥

'मनुष्यको पहले ही यथायोग्य बर्ताव करना चाहिये, जिससे आगे चलकर उसे बीती हुई बातके लिये पश्चात्ताप न करना पड़े ॥ ३५ ॥

पुत्रगृद्ध्या त्वया राजन् प्रियं तस्य चिकीर्षितम्।
पश्चात्तापमिमं प्राप्तो न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३६ ॥

'राजन् ! आपने पुत्रके प्रति आसक्ति रखनेके कारण सदा उसीका प्रिय करना चाहा, इसीलिये इस समय आपको यह पश्चात्तापका अवसर प्राप्त हुआ है; अतः अब आप शोक न करें ॥ ३६ ॥

मधु यः केवलं दृष्ट्वा प्रपातं नानुपश्यति।
स भ्रष्टो मधुलोभेन शोचत्येवं यथा भवान् ॥ ३७ ॥

'जो केवल ऊँचे स्थानपर लगे हुए मधुको देखकर वहाँसे गिरनेकी सम्भावनाकी ओरसे आँख बंद कर लेता है, वह उस मधुके लालचसे नीचे गिरकर इसी तरह शोक करता है, जैसे आप कर रहे हैं ॥ ३७ ॥

अर्थान्न शोचन् प्राप्नोति न शोचन् विन्दते फलम्।
न शोचञ्छ्रियमाप्नोति न शोचन् विन्दते परम् ॥ ३८ ॥

'शोक करनेवाला मनुष्य अपने अभीष्ट पदार्थोंको नहीं पाता है, शोकपरायण पुरुष किसी फलको नहीं हस्तगत कर पाता है। शोक करनेवालेको न तो लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और न उसे परमात्मा ही मिलता है ॥ ३८ ॥

स्वयमुत्पादयित्वाग्निं वस्त्रेण परिवेष्टयन्।
दह्यमानो मनस्तापं भजते न स पण्डितः ॥ ३९ ॥

'जो मनुष्य स्वयं आग जलाकर उसे कपड़ेमें लपेट लेता है और जलनेपर मन-ही-मन संतापका अनुभव करता है, वह बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता है ॥ ३९ ॥

त्वयैव ससुतेनायं वाक्यवायुसमीरितः।
लोभाज्येन च संसिक्तो ज्वलितः पार्थपावकः ॥ ४० ॥

'पुत्रसहित आपने ही अपने लोभरूपी घीसे सींचकर और वचनरूपी वायुसे प्रेरित करके पार्थरूपी अग्निको प्रज्वलित किया था ॥ ४० ॥

तस्मिन् समिद्धे पतिताः शलभा इव ते सुताः।
तान् वै शराग्निनिर्दग्धान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ४१ ॥

'उसी प्रज्वलित अग्निमें आपके सारे पुत्र पतङ्गोंके समान पड़ गये हैं। बाणोंकी आगमें जलकर भस्म हुए उन पुत्रोंके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥

यच्चाश्रुपातात् कलिलं वदनं वहसे नृप।
अशास्त्रदृष्टमेतद्धि न प्रशंसन्ति पण्डिताः ॥ ४२ ॥

'नरेश्वर ! आप जो आँसुओंकी धारासे भीगा हुआ मुँह लिये फिरते हैं, यह अशास्त्रीय कार्य है। विद्वान् पुरुष इसकी प्रशंसा नहीं करते हैं ॥ ४२ ॥

विस्फुलिङ्गा इव ह्येतान् दहन्ति किल मानवान्।
जहीहि मन्युं बुद्ध्या वै धारयात्मानमात्मना ॥ ४३ ॥

'ये शोकके आँसू आगकी चिनगारियोंके समान इन मनुष्योंको निःसंदेह जलाया करते हैं; अतः आप शोक छोड़िये और बुद्धिके द्वारा अपने मनको स्वयं ही सुस्थिर कीजिये' ॥ ४३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमाश्वासितस्तेन संजयेन महात्मना।
विदुरो भूय एवाह बुद्धिपूर्वं परंतप ॥ ४४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुओंको संताप देनेवाले जनमेजय ! महात्मा संजयने जब इस प्रकार राजा धृतराष्ट्रको आश्वासन दिया, तब विदुरजीने भी पुनः सान्त्वना देते हुए उनसे यह विचारपूर्ण वचन कहा ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

विदुरजीका राजा धृतराष्ट्रको समझाकर उनको शोकका त्याग करनेके लिये कहना

वैशम्पायन उवाच

ततोऽमृतसमैर्वाक्यैर्ह्लादयन् पुरुषर्षभम् ।
वैचित्रवीर्यं विदुरो यदुवाच निबोध तत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर विदुरजीने पुरुषप्रवर धृतराष्ट्रको अपने अमृतसमान मधुर वचनोंद्वारा आह्लाद प्रदान करते हुए वहाँ जो कुछ कहा, उसे सुनो ॥ १ ॥

विदुर उवाच

उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे धारयात्मानमात्मना ।
एषा वै सर्वसत्त्वानां लोकेश्वर परा गतिः ॥ २ ॥

विदुरजी बोले—राजन् ! आप धरतीपर क्यों पड़े हैं ? उठकर बैठ जाइये और बुद्धिके द्वारा अपने मनको स्थिर कीजिये । लोकेश्वर ! समस्त प्राणियोंकी यही अन्तिम गति है ॥ २ ॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ ३ ॥

सारे संग्रहोंका अन्त उनके क्षयमें ही है । भौतिक उन्नतियोंका अन्त पतनमें ही है । सारे संयोगोंका अन्त वियोगमें ही है । इसी प्रकार सम्पूर्ण जीवनका अन्त मृत्युमें ही होनेवाला है ॥ ३ ॥

यदा शूरं च भीरुं च यमः कर्षति भारत ।
तत् किं न योत्स्यन्ति हि ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ४ ॥

भरतनन्दन ! क्षत्रियशिरोमणे ! जब शूरवीर और डरपोक दोनोंको ही यमराज खींच ले जाते हैं, तब वे क्षत्रियलोग युद्ध क्यों न करते ! ॥ ४ ॥

अयुध्यमानो म्रियते युध्यमानश्च जीवति ।
कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्तते ॥ ५ ॥

महाराज ! जो युद्ध नहीं करता, वह भी मर जाता है और जो संग्राममें जूझता है, वह भी जीवित बच जाता है । कालको पाकर कोई भी उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥

अभावादीनि भूतानि भावमध्यानि भारत ।
अभावनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ ६ ॥

जितने प्राणी हैं, वे जन्मसे पहले यहाँ व्यक्त नहीं थे । वे बीचमें ही व्यक्त होकर दिखायी देते हैं और अन्तमें पुनः उनका अभाव (अव्यक्तरूपसे अवस्थान) हो जायगा । ऐसी अवस्थामें उनके लिये रोने-धोनेकी क्या आवश्यकता है?॥

न शोचन् मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः ।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि ॥ ७ ॥

शोक करनेवाला मनुष्य न तो मरनेवालेके साथ जा सकता है और न मर ही सकता है । जब लोककी ऐसी ही स्वाभाविक स्थिति है, तब आप किसलिये शोक कर रहे हैं? ॥

कालः कर्षति भूतानि सर्वाणि विविधान्युत ।
न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम ॥ ८ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! काल नाना प्रकारके समस्त प्राणियोंको खींच लेता है । कालको न तो कोई प्रिय है और न उसके द्वेषका ही पात्र है ॥ ८ ॥

यथा वायुस्तृणाग्राणि संवर्तयति सर्वशः ।
तथा कालवशं यान्ति भूतानि भरतर्षभ ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे हवा तिनकोंको सब ओर उड़ाती और डालती रहती है, उसी प्रकार समस्त प्राणी कालके अधीन होकर आते-जाते हैं ॥ ९ ॥

एकसार्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम् ।
यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना ॥ १० ॥

जो एक साथ संसारकी यात्रामें आये हैं, उन सबको एक दिन वहीं (परलोकमें) जाना है । उनमेंसे जिसका काल पहले उपस्थित हो गया, वह आगे चला जाता है । ऐसी दशामें किसीके लिये शोक क्या करना है ? ॥ १० ॥

न चाप्येतान् हतान् युद्धे राजञ्शोचितुमर्हसि ।
प्रमाणं यदि शास्त्राणि गतास्ते परमां गतिम् ॥ ११ ॥

राजन् ! युद्धमें मारे गये इन वीरोंके लिये तो आपको शोक करना ही नहीं चाहिये । यदि आप शास्त्रोंका प्रमाण मानते हैं तो वे निश्चय ही परम गतिको प्राप्त हुए हैं ॥११॥

सर्वे स्वाध्यायवन्तो हि सर्वे च चरितव्रताः ।
सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिदेवना ॥ १२ ॥

वे सभी वीर वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले थे । सबने ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया था तथा वे सभी युद्धमें शत्रुका सामना करते हुए वीरगतिको प्राप्त हुए हैं; अतः उनके लिये शोक करनेकी क्या बात है ! ॥ १२ ॥

अदर्शनादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः ।
नैते तव न तेषां त्वं तत्र का परिदेवना ॥ १३ ॥

ये अदृश्य जगत्‌से आये थे और पुनः अदृश्य जगत्‌में ही चले गये हैं । ये न तो आपके थे और न आप ही इनके हैं । फिर यहाँ शोक करनेका क्या कारण है ? ॥ १३ ॥

हतोऽपि लभते स्वर्गं हत्वा च लभते यशः ।
उभयं नो बहुगुणं नास्ति निष्फलता रणे ॥ १४ ॥

युद्धमें जो मारा जाता है, वह स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है और जो शत्रुको मारता है, उसे यशकी प्राप्ति होती है। ये दोनों ही अवस्थाएँ हमलोगोंके लिये बहुत लाभदायक हैं। युद्धमें निष्फलता तो है ही नहीं ॥ १४ ॥

तेषां कामदुघाँल्लोकानिन्द्रः संकल्पयिष्यति ।
इन्द्रस्यातिथयो ह्येते भवन्ति भरतर्षभ ॥ १५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इन्द्र उन वीरोंके लिये इच्छानुसार भोग प्रदान करनेवाले लोकोंकी व्यवस्था करेंगे । वे सब-के-सब इन्द्रके अतिथि होंगे ॥ १५ ॥

न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया ।
स्वर्गं यान्ति तथा मर्त्या यथा शूरा रणे हताः ॥ १६ ॥

युद्धमें मारे गये शूरवीर जितनी सुगमतासे स्वर्गलोकमें जाते हैं, उतनी सुविधासे मनुष्य प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञ, तपस्या और विद्याद्वारा भी नहीं जा सकते ॥ १६ ॥

शरीराग्निषु शूराणां जुहुवुस्ते शराहुतीः ।
हूयमानाञ्शरांश्चैव सेहुस्तेजस्विनो मिथः ॥ १७ ॥

शूरवीरोंके शरीररूपी अग्नियोंमें उन्होंने बाणोंकी आहुतियाँ दी हैं और उन तेजस्वी वीरोंने एक दूसरेकी शरीराग्नियोंमें होम किये जानेवाले बाणोंको सहन किया है ॥१७॥

एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमम् ।
न युद्धादधिकं किंचित् क्षत्रियस्येह विद्यते ॥ १८ ॥

राजन् ! इसलिये मैं आपसे कहता हूँ कि क्षत्रियके लिये इस जगत्में धर्मयुद्धसे बढ़कर दूसरा कोई स्वर्ग-प्राप्तिका उत्तम मार्ग नहीं है ॥ १८ ॥

क्षत्रियास्ते महात्मानः शूराः समितिशोभनाः ।
आशिषः परमाः प्राप्ता न शोच्याः सर्व एव हि॥ १९ ॥

वे महामनस्वी वीर क्षत्रिय युद्धमें शोभा पानेवाले थे; अतः उन्होंने अपनी कामनाओंके अनुरूप उत्तम लोक प्राप्त किये हैं। उन सबके लिये शोक करना तो किसी प्रकार उचित ही नहीं है ॥ १९ ॥

आत्मानमात्मनाऽऽश्वास्य मा शुचः पुरुषर्षभ ।
नाद्य शोकाभिभूतस्त्वं कायमुत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २० ॥

पुरुषप्रवर ! आप स्वयं ही अपने मनको सान्त्वना देकर शोकका परित्याग कीजिये। आज शोकसे व्याकुल होकर आपको अपने शरीरका त्याग नहीं करना चाहिये ॥

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ॥ २१ ॥

हमलोगोंने बारंबार संसारमें जन्म लेकर सहस्रों माता-पिता तथा सैकड़ों स्त्री-पुत्रोंके सुखका अनुभव किया है; परंतु आज वे किसके हैं अथवा हम उनमेंसे किसके हैं ?॥ २१ ॥

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ २२ ॥

शोकके हजारों स्थान हैं और भयके भी सैकड़ों स्थान हैं। वे प्रतिदिन मूढ़ मनुष्यपर ही अपना प्रभाव डालते हैं, विद्वान् पुरुषपर नहीं ॥ २२ ॥

न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम ।
न मध्यस्थः क्वचित्कालः सर्वं कालः प्रकर्षति ॥ २३ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! कालका न किसीसे प्रेम है और न किसीसे द्वेष, उसका कहीं उदासीन भाव भी नहीं है। काल सभीको अपने पास खींच लेता है ॥ २३ ॥

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २४ ॥

काल ही प्राणियोंको पकाता है, काल ही प्रजाओंका संहार करता है और काल ही सबके सो जानेपर भी जागता रहता है। कालका उल्लङ्घन करना बहुत ही कठिन है ॥ २४ ॥

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः ।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृद्ध्येदेषु न पण्डितः॥ २५ ॥

रूप, जवानी, जीवन, धनका संग्रह, आरोग्य तथा प्रिय जनोंका एक साथ निवास—ये सभी अनित्य हैं, अतः विद्वान् पुरुष इनमें कभी आसक्त न हो ॥ २५ ॥

न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि ।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते ॥ २६ ॥

जो दुःख सारे देशपर पड़ा है, उसके लिये अकेले आपको ही शोक करना उचित नहीं है । शोक करते-करते कोई मर जाय तो भी उसका वह शोक दूर नहीं होता है ॥ २६ ॥

अशोचन् प्रतिकुर्वीत यदि पश्येत् पराक्रमम् ।
भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ॥ २७ ॥
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते ।

यदि अपनेमें पराक्रम देखे तो शोक न करते हुए शोकके कारणका निवारण करनेकी चेष्टा करे। दुःखको दूर करनेके लिये सबसे अच्छी दवा यही है कि उसका चिन्तन छोड़ दिया जाय, चिन्तन करनेसे दुःख कम नहीं होता बल्कि और भी बढ़ जाता है ॥ २७½ ॥

अनिष्टसम्प्रयोगाच्च विप्रयोगात् प्रियस्य च ॥ २८ ॥
मानुषा मानसैर्दुःखैर्दह्यन्ते चाल्पबुद्धयः ।

मन्दबुद्धि मनुष्य ही अप्रिय वस्तुका संयोग और प्रिय वस्तुका वियोग होनेपर मानसिक दुःखोंसे दग्ध होने लगते हैं ॥ २८½ ॥

नार्थो न धर्मो न सुखं यदेतदनुशोचसि ॥ २९ ॥
न च नापैति कार्यार्थात्त्रिवर्गाच्चैव हीयते ।

जो आप यह शोक कर रहे हैं, यह न अर्थका साधक है, न धर्मका और न सुखका ही। इसके द्वारा मनुष्य अपने कर्तव्य-पथसे तो भ्रष्ट होता ही है, धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गसे भी वञ्चित हो जाता है ॥ २९½ ॥

अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः ॥ ३० ॥
असंतुष्टाः प्रमुह्यन्ति संतोषं यान्ति पण्डिताः ।

धनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाविशेषको पाकर असंतोषी मनुष्य तो मोहित हो जाते हैं; परंतु विद्वान् पुरुष सदा संतुष्ट ही रहते हैं ॥ ३०½ ॥

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः।
एतद् विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ॥ ३१ ॥

मनुष्यको चाहिये कि वह मानसिक दुःखको बुद्धि एवं विचारद्वारा और शारीरिक कष्टको ओषधियोंद्वारा दूर करे, यही विज्ञानकी शक्ति है। उसे बालकोंके समान अविवेकपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥

शयानं चानुशेते हि तिष्ठन्तं चानुतिष्ठति।
अनुधावति धावन्तं कर्म पूर्वकृतं नरम् ॥ ३२ ॥

मनुष्यका पूर्वकृत कर्म उसके सोनेपर साथ ही सोता है, उठनेपर साथ ही उठता है और दौड़नेपर भी साथ-ही-साथ दौड़ता है ॥ ३२ ॥

यस्यां यस्यामवस्थायां यत् करोति शुभाशुभम्।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समुपाश्नुते ॥ ३३ ॥

मनुष्य जिस-जिस अवस्थामें जो-जो शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसी-उसी अवस्थामें उसका फल भी पा लेता है ॥

येन येन शरीरेण यद्यत् कर्म करोति यः।
तेन तेन शरीरेण तत्फलं समुपाश्नुते ॥ ३४ ॥

जो जिस-जिस शरीरसे जो-जो कर्म करता है, दूसरे जन्ममें वह उसी-उसी शरीरसे उसका फल भोगता है ॥ ३४ ॥

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्यापकृतस्य च ॥ ३५ ॥

मनुष्य आप ही अपना बन्धु है, आप ही अपना शत्रु है और आप ही अपने शुभ या अशुभ कर्मका साक्षी है ॥ ३५ ॥

शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा।
कृतं भवति सर्वत्र नाकृतं विद्यते क्वचित् ॥ ३६ ॥

शुभ कर्मसे सुख मिलता है और पापकर्मसे दुःख, सर्वत्र किये हुए कर्मका ही फल प्राप्त होता है, कहीं भी बिना कियेका नहीं॥

न हि ज्ञानविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥ ३७ ॥

आप-जैसे बुद्धिमान् पुरुष अनेक विनाशकारी दोषोंसे युक्त तथा मूलभूत शरीरका भी नाश करनेवाले बुद्धिविरुद्ध कर्मोंमें नहीं आसक्त होते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

विदुरजीका शरीरकी अनित्यता बताते हुए धृतराष्ट्रको शोक त्यागनेके लिये कहना

धृतराष्ट्र उवाच

सुभाषितैर्महाप्राज्ञ शोकोऽयं विगतो मम।
भूय एव तु वाक्यानि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—परम बुद्धिमान् विदुर! तुम्हारा उत्तम भाषण सुनकर मेरा यह शोक दूर हो गया, तथापि तुम्हारे इन तात्त्विक वचनोंको मैं अभी और सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

अनिष्टानां च संसर्गादिष्टानां च विसर्जनात्।
कथं हि मानसैर्दुःखैः प्रमुच्यन्ते तु पण्डिताः ॥ २ ॥

विद्वान् पुरुष अनिष्टके संयोग और इष्टके वियोगसे होनेवाले मानसिक दुःखोंसे किस प्रकार छुटकारा पाते हैं? ॥

विदुर उवाच

यतो यतो मनो दुःखात् सुखाद् वा विप्रमुच्यते।
ततस्ततो नियम्यैतच्छान्तिं विन्देत वै बुधः ॥ ३ ॥

विदुरजीने कहा—महाराज! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिन-जिन साधनोंमें लगनेसे मन दुःख अथवा सुखसे मुक्त होता हो, उन्हींमें इसे नियमपूर्वक लगाकर शान्ति प्राप्त करे॥

अशाश्वतमिदं सर्वं चिन्त्यमानं नरर्षभ।
कदलीसंनिभो लोकः सारो ह्यस्य न विद्यते ॥ ४ ॥

नरश्रेष्ठ! विचार करनेपर यह सारा जगत् अनित्य ही जान पड़ता है। सम्पूर्ण विश्व केलेके समान सारहीन है; इसमें सार कुछ भी नहीं है ॥ ४॥

यदा प्राज्ञाश्च मूढाश्च धनवन्तोऽथ निर्धनाः।
सर्वे पितृवनं प्राप्य स्वपन्ति विगतज्वराः ॥ ५ ॥
निर्मांसैरस्थिभूयिष्ठैर्गात्रैः स्नायुनिबन्धनैः।
किं विशेषं प्रपश्यन्ति तत्र तेषां परे जनाः ॥ ६ ॥
येन प्रत्यवगच्छेयुः कुलरूपविशेषणम्।
कस्मादन्योन्यमिच्छन्ति विप्रलब्धधियो नराः ॥ ७ ॥

जब विद्वान्-मूर्ख, धनवान् और निर्धन सभी श्मशान-भूमिमें जाकर निश्चिन्त सो जाते हैं, उस समय उनके मांस-रहित, नाड़ियोंसे बँधे हुए तथा अस्थिबहुल अङ्गोंको देखकर क्या दूसरे लोग वहाँ उनमें कोई ऐसा अन्तर देख पाते हैं, जिससे वे उनके कुल और रूपकी विशेषताको समझ सकें; फिर भी वे मनुष्य एक दूसरेको क्यों चाहते हैं? इसलिये कि उनकी बुद्धि ठगी गयी है ॥ ५–७ ॥

गृहाणीव हि मर्त्यानामाहुर्देहानि पण्डिताः।
कालेन विनियुज्यन्ते सत्त्वमेकं तु शाश्वतम् ॥ ८ ॥

पण्डितलोग मरणधर्मा प्राणियोंके शरीरोंको घरके तुल्य बतलाते हैं; क्योंकि सारे शरीर समयपर नष्ट हो जाते हैं, किंतु उसके भीतर जो एकमात्र सत्त्वस्वरूप आत्मा है, वह नित्य है ॥ ८ ॥

यथा जीर्णमजीर्णं वा वस्त्रं त्यक्त्वा तु पूरुषः।
अन्यद् रोचयते वस्त्रमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥ ९ ॥

जैसे मनुष्य नये अथवा पुराने वस्त्रको उतारकर दूसरे नूतन वस्त्रको पहननेकी रुचि रखता है, उसी प्रकार देहधारियों-के शरीर उनके द्वारा समय-समयपर त्यागे और ग्रहण किये जाते हैं ॥ ९ ॥

वैचित्रवीर्य प्राप्यं हि दुःखं वा यदि वा सुखम् ।
प्राप्नुवन्तीह भूतानि स्वकृतेनैव कर्मणा ॥ १० ॥

विचित्रवीर्यनन्दन ! यदि दुःख या सुख प्राप्त होनेवाला है तो प्राणी उसे अपने किये हुए कर्मके अनुसार ही पाते हैं ॥

कर्मणा प्राप्यते स्वर्गः सुखं दुःखं च भारत ।
ततो वहति तं भारमवशः स्ववशोऽपि वा ॥ ११ ॥

भरतनन्दन ! कर्मके अनुसार ही परलोकमें स्वर्ग या नरक तथा इहलोकमें सुख और दुःख प्राप्त होते हैं; फिर मनुष्य सुख या दुःखके उस भारको स्वाधीन या पराधीन होकर ढोता रहता है ॥ ११ ॥

यथा च मृन्मयं भाण्डं चक्रारूढं विपद्यते ।
किंचित् प्रक्रियमाणं वा कृतमात्रमथापि वा ॥ १२ ॥
छिन्नं वाप्यवरोप्यन्तमवतीर्णमथापि वा ।
आर्द्रं वाप्यथवा शुष्कं पच्यमानमथापि वा ॥ १३ ॥
उत्तार्यमाणमापाकादुद्धृतं चापि भारत ।
अथवा परिभुज्यन्तमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥ १४ ॥

जैसे मिट्टीका बर्तन बनाये जानेके समय कभी चाकपर चढ़ाते ही नष्ट हो जाता है, कभी कुछ-कुछ बननेपर, कभी पूरा बन जानेपर, कभी सूतसे काट देनेपर, कभी चाकसे उतारते समय, कभी उतर जानेपर, कभी गीली या सूखी अवस्थामें, कभी पकाये जाते समय, कभी आवाँसे उतारते समय, कभी पाकस्थानसे उठाकर ले जाते समय अथवा कभी उसे उपयोगमें लाते समय फूट जाता है; ऐसी ही दशा देह-धारियोंके शरीरोंकी भी होती है ॥ १२–१४ ॥

गर्भस्थो वा प्रसूतो वाप्यथ वा दिवसान्तरः ।
अर्धमासगतो वापि मासमात्रगतोऽपि वा ॥ १५ ॥
संवत्सरगतो वापि द्विसंवत्सर एव वा ।
यौवनस्थोऽथ मध्यस्थो वृद्धो वापि विपद्यते ॥ १६ ॥

कोई गर्भमें रहते समय, कोई पैदा हो जानेपर, कोई कई दिनोंका होनेपर, कोई पंद्रह दिनका, कोई एक मासका तथा कोई एक या दो सालका होनेपर, कोई युवावस्थामें, कोई मध्यावस्थामें अथवा कोई वृद्धावस्थामें पहुँचनेपर मृत्युको प्राप्त हो जाता है ॥ १५-१६ ॥

प्राक्कर्मभिस्तु भूतानि भवन्ति न भवन्ति च ।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुतप्यसे ॥ १७ ॥

प्राणी पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही इस जगत्में रहते और नहीं रहते हैं । जब लोककी ऐसी ही स्वाभाविक स्थिति है, तब आप किसलिये शोक कर रहे हैं ? ॥ १७ ॥

यथा तु सलिलं राजन् क्रीडार्थमनुसंतरत् ।
उन्मज्जेच्च निमज्जेच्च किंचित् सत्त्वं नराधिप ॥ १८ ॥
एवं संसारगहने उन्मज्जननिमज्जने ।
कर्मभोगेन बध्यन्ते क्लिश्यन्ते चाल्पबुद्धयः ॥ १९ ॥

राजन् ! नरेश्वर ! जैसे क्रीडाके लिये पानीमें तैरता हुआ कोई प्राणी कभी डूबता है और कभी ऊपर आ जाता है, इसी प्रकार इस अगाध संसार-समुद्रमें जीवोंका डूबना और उतराना (मरना और जन्म लेना) लगा रहता है, मन्दबुद्धि मनुष्य ही यहाँ कर्मभोगसे बँधते और कष्ट पाते हैं ॥ १८-१९ ॥

ये तु प्राज्ञाः स्थिताः सत्त्वे संसारेऽस्मिन् हितैषिणः ।
समागमज्ञा भूतानां ते यान्ति परमां गतिम् ॥ २० ॥

जो बुद्धिमान् मानव इस संसारमें सत्त्वगुणसे युक्त, सबका हित चाहनेवाले और प्राणियोंके समागमको कर्मानुसार समझनेवाले हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

दुःखमय संसारके गहन स्वरूपका वर्णन और उससे छूटनेका उपाय

धृतराष्ट्र उवाच

कथं संसारगहनं विज्ञेयं वदतां वर ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ विदुर ! इस गहन संसारके स्वरूपका ज्ञान कैसे हो ? यह मैं सुनना चाहता हूँ । मेरे प्रश्नके अनुसार तुम इस विषयका यथार्थरूपसे वर्णन करो ॥

विदुर उवाच

जन्मप्रभृति भूतानां क्रिया सर्वोपलक्ष्यते ।
पूर्वमेवेह कलिले वसते किंचिदन्तरम् ॥ २ ॥
ततः स पञ्चमेऽतीते मासे वासमकल्पयत् ।
ततः सर्वाङ्गसम्पूर्णो गर्भो वै स तु जायते ॥ ३ ॥

विदुरजीने कहा—महाराज ! जब गर्भाशयमें वीर्य और रजका संयोग होता है तभीसे जीवोंकी गर्भवृद्धिरूप सारी क्रिया शास्त्रके अनुसार देखी जाती है ।* आरम्भमें जीव

* 'एकरात्रोषितं कलिलं भवति पञ्चरात्राद् बुद्बुदः' एक रातमें रज और वीर्य मिलकर 'कलिल' रूप होते हैं और पाँच रातमें 'बुद्बुद' के आकारमें परिणत हो जाते है। इत्यादि शास्त्रवचनोंके अनुसार गर्भके बढ़ने आदिकी सारी क्रिया ज्ञात होती है।

कलिल (वीर्य और रजके संयोग) के रूपमें रहता है, फिर कुछ दिन बाद पाँचवाँ महीना बीतनेपर वह चैतन्यरूपसे प्रकट होकर पिण्डमें निवास करने लगता है। इसके बाद वह गर्भस्थ पिण्ड सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है ॥ २-३ ॥

अमेध्यमध्ये वसति मांसशोणितलेपने ।
ततस्तु वायुवेगेन ऊर्ध्वपादो ह्यधःशिराः ॥ ४ ॥

इस समय उसे मांस और रुधिरसे लिपे हुए अत्यन्त अपवित्र गर्भाशयमें रहना पड़ता है। फिर वायुके वेगसे उसके पैर ऊपरकी ओर हो जाते हैं और सिर नीचेकी ओर ॥ ४ ॥

योनिद्वारमुपागम्य बहून् क्लेशान् समृच्छति ।
योनिसम्पीडनाच्चैव पूर्वकर्मभिरन्वितः ॥ ५ ॥
तस्मान्मुक्तः स संसारादन्यान् पश्यत्युपद्रवान् ।
ग्रहास्तमनुगच्छन्ति सारमेया इवामिषम् ॥ ६ ॥

इस स्थितिमें योनिद्वारके समीप आ जानेसे उसे बड़े दुःख सहने पड़ते हैं। फिर पूर्व कर्मोंसे संयुक्त हुआ वह जीव योनिमार्गसे पीड़ित हो उससे छुटकारा पाकर बाहर आ जाता है और संसारमें आकर अन्यान्य प्रकारके उपद्रवोंका सामना करता है। जैसे कुत्ते मांसकी ओर झपटते हैं, उसी प्रकार बालग्रह उस शिशुके पीछे लगे रहते हैं ॥ ५-६ ॥

ततः प्राप्तोत्तरे काले व्याधयश्चापि तं तथा ।
उपसर्पन्ति जीवन्तं बध्यमानं स्वकर्मभिः ॥ ७ ॥

तदनन्तर ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों ही-त्यों अपने कर्मोंसे बँधे हुए उस जीवको जीवित अवस्थामें नयी-नयी व्याधियाँ प्राप्त होने लगती हैं ॥ ७ ॥

तं बद्धमिन्द्रियैः पाशैः संगस्वादुभिरावृतम् ।
व्यसनान्यपि वर्तन्ते विविधानि नराधिप ॥ ८ ॥

नरेश्वर ! फिर आसक्तिके कारण जिनमें रसकी प्रतीति होती है, उन विषयोंसे घिरे और इन्द्रियरूपी पाशोंसे बँधे हुए उस संसारी जीवको नाना प्रकारके सङ्कट घेर लेते हैं ॥ ८ ॥

बध्यमानश्च तैर्भूयो नैव तृप्तिमुपैति सः ।
तदा नावैति चैवायं प्रकुर्वन् साध्वसाधु वा ॥ ९ ॥

उनसे बँध जानेपर पुनः इसे कभी तृप्ति ही नहीं होती है। उस अवस्थामें वह भले-बुरे कर्म करता हुआ भी उनके विषयमें कुछ समझ नहीं पाता ॥ ९ ॥

तथैव परिरक्षन्ति ये ध्यानपरिनिष्ठिताः ।
अयं न बुध्यते तावद् यमलोकमथागतम् ॥ १० ॥

जो लोग भगवान्‌के ध्यानमें लगे रहनेवाले हैं, वे ही शास्त्रके अनुसार चलकर अपनी रक्षा कर पाते हैं। साधारण जीव तो अपने सामने आये हुए यमलोकको भी नहीं समझ पाता है ॥ १० ॥

यमदूतैर्विकृष्यंश्च मृत्युं कालेन गच्छति ।
वाग्घीनस्य च यन्मात्रमिष्टानिष्टं कृतं मुखे ।
भूय एवात्मनाऽऽत्मानं बध्यमानमुपेक्षते ॥ ११ ॥

तदनन्तर कालसे प्रेरित हो यमदूत उसे शरीरसे बाहर खींच लेते हैं और वह मृत्युको प्राप्त हो जाता है। उस समय उसमें बोलनेकी भी शक्ति नहीं रहती। उसके जितने भी शुभ या अशुभ कर्म हैं वे सामने प्रकट होते हैं। उनके अनुसार पुनः अपने आपको देहबन्धनमें बँधता हुआ देखकर भी वह उपेक्षा कर देता है—अपने उद्धारका प्रयत्न नहीं करता ११

अहो विनिकृतो लोको लोभेन च वशीकृतः ।
लोभक्रोधभयोन्मत्तो नात्मानमवबुध्यते ॥ १२ ॥

अहो ! लोभके वशीभूत होकर यह सारा संसार ठगा जा रहा है। लोभ, क्रोध और भयसे यह इतना पागल हो गया है कि अपने आपको भी नहीं जानता ॥ १२ ॥

कुलीनत्वे च रमते दुष्कुलीनान् विकुत्सयन् ।
धनदर्पेण दृप्तश्च दरिद्रान् परिकुत्सयन् ॥ १३ ॥

जो लोग हीन कुलमें उत्पन्न हुए हैं, उनकी निन्दा करता हुआ कुलीन मनुष्य अपनी कुलीनतामें ही मस्त रहता है और धनी धनके घमंडसे चूर होकर दरिद्रोंके प्रति अपनी घृणा प्रकट करता है ॥ १३ ॥

मूर्खानिति परानाह नात्मानं समवेक्षते ।
दोषान् क्षिपति चान्येषां नात्मानं शास्तुमिच्छति॥१४॥

वह दूसरोंको तो मूर्ख बताता है, पर अपनी ओर कभी नहीं देखता। दूसरोंके दोषोंके लिये उनपर आक्षेप करता है, परंतु उन्हीं दोषोंसे स्वयंको बचानेके लिये अपने मनको काबूमें नहीं रखना चाहता ॥ १४ ॥

यदा प्राज्ञाश्च मूर्खाश्च धनवन्तश्च निर्धनाः ।
कुलीनाश्चाकुलीनाश्च मानिनोऽथाप्यमानिनः ॥ १५ ॥
सर्वे पितृवनं प्राप्ताः स्वपन्ति विगतत्वचः ।
निर्मांसैरस्थिभूयिष्ठैर्गात्रैः स्नायुनिबन्धनैः ॥ १६ ॥
विशेषं न प्रपश्यन्ति तत्र तेषां परे जनाः ।
येन प्रत्यवगच्छेयुः कुलरूपविशेषणम् ॥ १७ ॥

जब ज्ञानी और मूर्ख, धनवान् और निर्धन, कुलीन और अकुलीन तथा मानी और मानरहित सभी मरघटमें जाकर सो जाते हैं, उनकी चमड़ी भी नष्ट हो जाती है और नाड़ियोंसे बँधे हुए मांसरहित हड्डियोंके ढेररूप उनके नग्न शरीर सामने आते हैं, तब वहाँ खड़े हुए दूसरे लोग उनमें कोई ऐसा अन्तर नहीं देख पाते हैं, जिससे एककी अपेक्षा दूसरेके कुल और रूपकी विशेषताको जान सकें ॥१५–१७॥

यदा सर्वे समं न्यस्ताः स्वपन्ति धरणीतले ।
कस्मादन्योन्यमिच्छन्ति प्रलब्धुमिह दुर्बुधाः ॥ १८ ॥

जब मरनेके बाद श्मशानमें डाल दिये जानेपर सभी लोग समानरूपसे पृथ्वीकी गोदमें सोते हैं, तब वे मूर्ख मानव इस संसारमें क्यों एक दूसरेको ठगनेकी इच्छा करते हैं ? ॥ १८॥

प्रत्यक्षं च परोक्षं च यो निशम्य श्रुतिं त्विमाम् ।
अध्रुवे जीवलोकेऽस्मिन् यो धर्ममनुपालयन् ।
जन्मप्रभृति वर्तेत प्राप्नुयात् परमां गतिम् ॥ १९ ॥

इस क्षणभङ्गुर जगत्‌में जो पुरुष इस वेदोक्त उपदेशको साक्षात् जानकर या किसीके द्वारा सुनकर जन्मसे ही निरन्तर

धर्मका पालन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

एवं सर्वं विदित्वा वै यस्तत्त्वमनुवर्तते ।
स प्रमोक्षाय लभते पन्थानं मनुजेश्वर ॥ २० ॥

नरेश्वर ! जो इस प्रकार सब कुछ जानकर तत्त्वका अनुसरण करता है, वह मोक्ष तक पहुँचनेके लिये मार्ग प्राप्त कर लेता है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

गहन वनके दृष्टान्तसे संसारके भयंकर स्वरूपका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

यदिदं धर्मगहनं बुद्ध्या समनुगम्यते ।
तद्धि विस्तरतः सर्वं बुद्धिमार्गं प्रशंस मे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! यह जो धर्मका गूढ़ स्वरूप है, वह बुद्धिसे ही जाना जाता है; अतः तुम मुझसे सम्पूर्ण बुद्धिमार्गका विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १ ॥

विदुर उवाच

अत्र ते वर्तयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे ।
यथा संसारगहनं वदन्ति परमर्षयः ॥ २ ॥

विदुरजीने कहा—राजन् ! मैं भगवान् स्वयम्भूको नमस्कार करके संसाररूप गहन वनके उस स्वरूपका वर्णन करता हूँ, जिसका निरूपण बड़े-बड़े महर्षि करते हैं ॥ २ ॥

कश्चिन्महति कान्तारे वर्तमानो द्विजः किल ।
महद् दुर्गमनुप्राप्तो वनं क्रव्यादसंकुलम् ॥ ३ ॥

कहते हैं कि किसी विशाल दुर्गम वनमें कोई ब्राह्मण यात्रा कर रहा था । वह वनके अत्यन्त दुर्गम प्रदेशमें जा पहुँचा, जो हिंसक जन्तुओंसे भरा हुआ था ॥ ३ ॥

सिंहव्याघ्रगजर्क्षौघैरतिघोरं महास्वनैः ।
पिशितादैरतिभयैर्महोग्राकृतिभिस्तथा ॥ ४ ॥
समन्तात् संपरिक्षिप्तं यत् स्म दृष्ट्वा त्रसेद् यमः ।

जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले सिंह, व्याघ्र, हाथी और रीछोंके समुदायोंने उस स्थानको अत्यन्त भयानक बना दिया था । भीषण आकारवाले अत्यन्त भयंकर मांसभक्षी प्राणियोंने उस वनप्रान्तको चारों ओरसे घेरकर ऐसा बना दिया था, जिसे देखकर यमराज भी भयसे थर्रा उठे ॥ ४½ ॥

तदस्य दृष्ट्वा हृदयमुद्वेगमगमत् परम् ॥ ५ ॥
अभ्युच्छ्रयश्च रोम्णां वै विक्रियाश्च परंतप ।

शत्रुदमन नरेश ! वह स्थान देखकर ब्राह्मणका हृदय अत्यन्त उद्विग्न हो उठा । उसे रोमाञ्च हो आया और मनमें अन्य प्रकारके भी विकार उत्पन्न होने लगे ॥ ५½ ॥

स तद् वनं व्यनुसरन् सम्प्रधावन्नितस्ततः ॥ ६ ॥
वीक्षमाणो दिशः सर्वाः शरणं क्व भवेदिति ।

वह उस वनका अनुसरण करता इधर-उधर दौड़ता तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें ढूँढ़ता फिरता था कि कहीं मुझे शरण मिले ॥ ६½ ॥

स तेषां छिद्रमन्विच्छन् प्रद्रुतो भयपीडितः ॥ ७ ॥
न च निर्याति वै दूरं न वा तैर्विप्रमोच्यते ।

वह उन हिंसक जन्तुओंका छिद्र देखता हुआ भयसे पीड़ित हो भागने लगा; परंतु न तो वहाँसे दूर निकल पाता था और न वे ही उसका पीछा छोड़ते थे ॥ ७½ ॥

अथापश्यद् वनं घोरं समन्ताद् वागुरावृतम् ॥ ८ ॥
बाहुभ्यां सम्परिक्षिप्तं स्त्रिया परमघोरया ।

इतनेहीमें उसने देखा कि वह भयानक वन चारों ओरसे जालसे घिरा हुआ है और एक बड़ी भयानक स्त्रीने अपनी दोनों भुजाओंसे उसको आवेष्टित कर रक्खा है ॥ ८½ ॥

पञ्चशीर्षधरैर्नागैः शैलैरिव समुन्नतैः ॥ ९ ॥
नभःस्पृशैर्महावृक्षैः परिक्षिप्तं महावनम् ।

पर्वतोंके समान ऊँचे और पाँच सिरवाले नागों तथा बड़े-बड़े गगनचुम्बी वृक्षोंसे वह विशाल वन व्याप्त हो रहा है ॥ ९½ ॥

वनमध्ये च तत्राभूदुदपानः समावृतः ॥ १० ॥
वल्लीभिस्तृणछन्नाभिर्दृढाभिरभिसंवृतः ।

उस वनके भीतर एक कुआँ था, जो घासोंसे ढकी हुई सुदृढ़ लताओंके द्वारा सब ओरसे आच्छादित हो गया था १०½

पपात स द्विजस्तत्र निगूढे सलिलाशये ॥ ११ ॥
विलग्नश्चाभवत् तस्मिन् लतासंतानसंकुले ।

वह ब्राह्मण उस छिपे हुए कुएँमें गिर पड़ा; परंतु लता-वेलोंसे व्याप्त होनेके कारण वह उसमें फँसकर नीचे नहीं गिरा, ऊपर ही लटका रह गया ॥ ११½ ॥

पनसस्य यथा जातं वृन्तबद्धं महाफलम् ॥ १२ ॥
स तथा लम्बते तत्र ह्यूर्ध्वपादो ह्यधःशिराः ।

जैसे कटहलका विशाल फल वृन्तमें बँधा हुआ लटकता रहता है, उसी प्रकार वह ब्राह्मण ऊपरको पैर और नीचेको सिर किये उस कुएँमें लटक गया ॥ १२½ ॥

अथ तत्रापि चान्योऽस्य भूयो जात उपद्रवः ॥ १३ ॥
कूपमध्ये महानागमपश्यत महाबलम् ।
कूपवीनाहवेलायामपश्यत महागजम् ॥ १४ ॥
षड्वक्त्रं कृष्णशुक्लं च द्विषट्कपदचारिणम् ।

वहाँ भी उसके सामने पुनः दूसरा उपद्रव खड़ा हो गया। उसने कूपके भीतर एक महाबली महानाग बैठा हुआ देखा तथा कुएँके ऊपरी तटपर उसके मुखबन्धके पास एक विशाल हाथीको खड़ा देखा, जिनके छः मुँह थे । वह सफेद और काले रंगका था तथा बारह पैरोंसे चला करता था १३-१४½

क्रमेण परिसर्पन्तं वल्लीवृक्षसमावृतम् ॥ १५ ॥
तस्य चापि प्रशाखासु वृक्षशाखावलम्बिनः ।
नानारूपा मधुकरा घोररूपा भयावहाः ॥ १६ ॥
आसते मधु संवृत्य पूर्वमेव निकेतजाः ।

वह लताओं तथा वृक्षोंसे घिरे हुए उस कूपमें क्रमशः बढ़ा आ रहा था। वह ब्राह्मण, जिस वृक्षकी शाखापर लटका था, उसकी छोटी-छोटी टहनियोंपर पहलेसे ही मधुके छत्तोंसे पैदा हुई अनेक रूपवाली, घोर एवं भयंकर मधुमक्खियाँ मधुको घेरकर बैठी हुई थीं ॥ १५-१६½ ॥

भूयो भूयः समीहन्ते मधूनि भरतर्षभ ॥१७॥
स्वादनीयानि भूतानां यैर्बालो विप्रकृष्यते ।

भरतश्रेष्ठ ! समस्त प्राणियोंको स्वादिष्ठ प्रतीत होनेवाले उस मधुको, जिसपर बालक आकृष्ट हो जाते हैं, वे मक्खियाँ बारंबार पीना चाहती थीं ॥ १७½ ॥

तेषां मधूनां बहुधा धारा प्रस्रवते तदा ॥ १८ ॥
आलम्बमानः स पुमान् धारां पिबति सर्वदा ।

उस समय उस मधुकी अनेक धाराएँ वहाँ झर रही थीं और वह लटका हुआ पुरुष निरन्तर उस मधुधाराको पी रहा था ॥ १८½॥

न चास्य तृष्णा विरता पिबमानस्य संकटे ॥ १९ ॥
अभीप्सति तदा नित्यमतृप्तः स पुनः पुनः ।

यद्यपि वह संकटमें था तो भी उस मधुको पीते-पीते उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती थी। वह सदा अतृप्त रहकर ही बारंबार उसे पीनेकी इच्छा रखता था ॥ १९½ ॥

न चास्य जीविते राजन् निर्वेदः समजायत ॥ २० ॥
तत्रैव च मनुष्यस्य जीविताशा प्रतिष्ठिता ।

राजन् ! उसे अपने उस संकटपूर्ण जीवनसे वैराग्य नहीं हुआ है। उस मनुष्यके मनमें वहीं उसी दशासे जीवित रहकर मधु पीते रहनेकी आशा जड़ जमाये हुए है ॥ २०½ ॥

कृष्णाः श्वेताश्च तं वृक्षं कुट्टयन्ति च मूषिकाः ॥ २१ ॥
व्यालैश्च वनदुर्गान्ते स्त्रिया च परमोग्रया ।
कूपाधस्ताच्च नागेन वीनाहे कुञ्जरेण च ॥ २२ ॥
वृक्षप्रपाताच्च भयं मूषिकेभ्यश्च पञ्चमम् ।
मधुलोभान्मधुकरैः षष्ठमाहुर्महद् भयम् ॥ २३ ॥

जिस वृक्षके सहारे वह लटका हुआ है, उसे काले और सफेद चूहे निरन्तर काट रहे हैं। पहले तो उसे वनके दुर्गम प्रदेशके भीतर ही अनेक सर्पोंसे भय है, दूसरा भय सीमापर खड़ी हुई उस भयंकर स्त्रीसे है, तीसरा कुँएके नीचे बैठे हुए नागसे है, चौथा कुँएके मुखबन्धके पास खड़े हुए हाथीसे है और पाँचवाँ भय चूहोंके काट देनेपर उस वृक्षसे गिर जानेका है। इनके सिवा, मधुके लोभसे मधुमक्खियोंकी ओरसे जो उसको महान् भय प्राप्त होनेवाला है, वह छठा भय बताया गया है ॥ २१–२३ ॥

एवं स वसते तत्र क्षिप्तः संसारसागरे ।
न चैव जीविताशायां निर्वेदमुपगच्छति ॥ २४ ॥

इस प्रकार संसार-सागरमें गिरा हुआ वह मनुष्य इतने भयोंसे घिरकर वहाँ निवास करता है तो भी उसे जीवनकी आशा बनी हुई है और उसके मनमें वैराग्य नहीं उत्पन्न होता है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

संसाररूपी वनके रूपकका स्पष्टीकरण

धृतराष्ट्र उवाच

अहो खलु महद् दुःखं कृच्छ्रवासश्च तस्य ह ।
कथं तस्य रतिस्तत्र तुष्टिर्वा वदतां वर ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—वक्ताओंमें श्रेष्ठ विदुर ! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है ! उस ब्राह्मणको तो महान् दुःख प्राप्त हुआ था। वह बड़े कष्टसे वहाँ रह रहा था तो भी वहाँ कैसे उसका मन लगता था और कैसे उसे संतोष होता था ? ॥१॥

स देशः क नु यत्रासौ वसते धर्मसंकटे ।
कथं वा स विमुच्येत नरस्तस्मान्महाभयात् ॥ २ ॥

कहाँ है वह देश, जहाँ बेचारा ब्राह्मण ऐसे धर्मसङ्कटमें रहता है ? उस महान् भयसे उसका छुटकारा किस प्रकार हो सकता है ! ॥ २ ॥

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व साधु चेष्टामहे तदा ।
कृपा मे महती जाता तस्याभ्युद्धरणेन हि ॥ ३ ॥

यह सब मुझे बताओ; फिर हम सब लोग उसे वहाँसे निकालनेकी पूरी चेष्टा करेंगे। उसके उद्धारके लिये मुझे बड़ी दया आ रही है ॥ ३ ॥

विदुर उवाच

उपमानमिदं राजन् मोक्षविद्भिरुदाहृतम् ।
सुकृतं विन्दते येन परलोकेषु मानवः ॥ ४ ॥

विदुरजीने कहा—राजन् ! मोक्षतत्त्वके विद्वानोंद्वारा बताया गया यह एक दृष्टान्त है, जिसे समझकर वैराग्य धारण करनेसे मनुष्य परलोकमें पुण्यका फल पाता है ॥ ४॥

उच्यते यत् तु कान्तारं महासंसार एव सः ।
वनं दुर्गं हि यच्चैतत् संसारगहनं हि तत् ॥ ५ ॥

जिसे दुर्गम स्थान बताया गया है, वह महासंसार ही है और जो यह दुर्गम वन कहा गया है, यह संसारका ही गहन स्वरूप है ॥ ५ ॥

ये च ते कथिता व्याला व्याधयस्ते प्रकीर्तिताः ।
या सा नारी बृहत्काया अध्यतिष्ठत तत्र वै ॥ ६ ॥

तामाहुस्तु जरां प्राज्ञा रूपवर्णविनाशिनीम् ।

जो सर्प कहे गये हैं, वे नाना प्रकारके रोग हैं । उस वनकी सीमापर जो विशालकाय नारी खड़ी थी, उसे विद्वान् पुरुष रूप और कान्तिका विनाश करनेवाली वृद्धावस्था बताते हैं ॥ ६½ ॥

यस्तत्र कूपो नृपते स तु देहः शरीरिणाम् ॥ ७ ॥
यस्तत्र वसतेऽधस्तान्महाहिः काल एव सः ।
अन्तकः सर्वभूतानां देहिनां सर्वहार्यसौ ॥ ८ ॥

नरेश्वर ! उस वनमें जो कुआँ कहा गया है, वह देहधारियोंका शरीर है । उसमें नीचे जो विशाल नाग रहता है, वह काल ही है । वही सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्त करनेवाला और देहधारियोंका सर्वस्व हर लेनेवाला है ॥ ७-८ ॥

कूपमध्ये च या जाता वल्ली यत्र स मानवः ।
प्रताने लम्बते लग्नो जीविताशा शरीरिणाम् ॥ ९ ॥

कुँएके मध्यभागमें जो लता उत्पन्न हुई बतायी गयी है, जिसको पकड़कर वह मनुष्य लटक रहा है, वह देहधारियोंके जीवनकी आशा ही है ॥ ९ ॥

स यस्तु कूपवीनाहे तं वृक्षं परिसर्पति ।
षड्वक्त्रः कुञ्जरो राजन् स तु संवत्सरः स्मृतः॥ १० ॥

राजन् ! जो कुएँके मुखबन्धके समीप छः मुखोंवाला हाथी उस वृक्षकी ओर बढ़ रहा है, उसे संवत्सर माना गया है ॥ १० ॥

मुखानि ऋतवो मासाः पादा द्वादश कीर्तिताः ।
ये तु वृक्षं निकृन्तन्ति मूषिकाः सततोत्थिताः ॥ ११ ॥
रात्र्यहानि तु तान्याहुर्भूतानां परिचिन्तकाः ।

छः ऋतुएँ ही उसके छः मुख हैं और बारह महीने ही बारह पैर बताये गये हैं । जो चूहे सदा उद्यत रहकर उस वृक्षको काटते हैं, उन चूहोंको विचारशील विद्वान् प्राणियोंके दिन और रात बताते हैं ॥ ११½ ॥

ये ते मधुकरास्तत्र कामास्ते परिकीर्तिताः ॥ १२ ॥
यास्तु ता बहुशो धाराः स्रवन्ति मधुनिस्रवम् ।
तांस्तु कामरसान् विद्याद् यत्र मज्जन्ति मानवाः॥ १३ ॥

और जो-जो वहाँ मधुमक्खियाँ कही गयी हैं, वे सब कामनाएँ हैं । जो बहुत-सी धाराएँ मधुके झरने झरती रहती हैं, उन्हें कामरस जानना चाहिये, जहाँ सभी मानव डूब जाते हैं ॥ १२-१३ ॥

एवं संसारचक्रस्य परिवृत्तिं विदुर्बुधाः ।
येन संसारचक्रस्य पाशांश्छिन्दन्ति वै बुधाः ॥ १४ ॥

विद्वान् पुरुष इस प्रकार संसारचक्रकी गतिको जानते हैं; इसीलिये वे वैराग्यरूपी शस्त्रसे इसके सारे बन्धनोंको काट देते हैं ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

संसारचक्रका वर्णन और रथके रूपकसे संयम और ज्ञान आदिको मुक्तिका उपाय बताना

धृतराष्ट्र उवाच

अहोऽभिहितमाख्यानं भवता तत्त्वदर्शिना ।
भूय एव तु मे हर्षः श्रुत्वा वागमृतं तव ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! तुमने अद्भुत आख्यान सुनाया । वास्तवमें तुम तत्त्वदर्शी हो । पुनः तुम्हारी अमृतमयी वाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष होगा ॥ १ ॥

विदुर उवाच

शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि मार्गस्यैतस्य विस्तरम् ।
यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यन्ते संसारेभ्यो विचक्षणाः ॥ २ ॥

विदुरजीने कहा—राजन् ! सुनिये । मैं पुनः विस्तारपूर्वक इस मार्गका वर्णन करता हूँ, जिसे सुनकर बुद्धिमान् पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

यथा तु पुरुषो राजन् दीर्घमध्वानमास्थितः ।
क्वचित् क्वचिच्छ्रमाच्छ्रान्तः कुरुते वासमेव वा ॥ ३ ॥
एवं संसारपर्याये गर्भवासेषु भारत ।
कुर्वन्ति दुर्बुधा वासं मुच्यन्ते तत्र पण्डिताः ॥ ४ ॥

नरेश्वर ! जिस प्रकार किसी लंबे रास्तेपर चलनेवाला पुरुष परिश्रमसे थककर बीचमें कहीं-कहीं विश्रामके लिये ठहर जाता है, उसी प्रकार इस संसारयात्रामें चलते हुए अज्ञानी पुरुष विश्रामके लिये गर्भवास किया करते हैं । भारत ! किंतु विद्वान् पुरुष इस संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ३-४ ॥

तस्मादध्वानमेवैतमाहुः शास्त्रविदो जनाः ।
यत्तु संसारगहनं वनमाहुर्मनीषिणः ॥ ५ ॥

इसीलिये शास्त्रज्ञ पुरुषोंने गर्भवासको मार्गका ही रूपक दिया है और गहन संसारको मनीषी पुरुष वन कहा करते हैं ॥ ५ ॥

सोऽयं लोकसमावर्तो मर्त्यानां भरतर्षभ ।
चराणां स्थावराणां च न गृध्येत् तत्र पण्डितः ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! यही मनुष्यों तथा स्थावर-जङ्गम प्राणियोंका संसारचक्र है । विवेकी पुरुषको इसमें आसक्त नहीं होना चाहिये ॥ ६ ॥

शारीरा मानसाश्चैव मर्त्यानां ये तु व्याधयः ।
प्रत्यक्षाश्च परोक्षाश्च ते व्यालाः कथिता बुधैः ॥ ७ ॥

मनुष्योंकी जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ हैं, उन्हींको विद्वानोंने सर्प एवं हिंसक जीव बताया है ॥ ७ ॥

क्लिश्यमानाश्च तैर्नित्यं वार्यमाणाश्च भारत ।

स्वकर्मभिर्महाव्यालैर्नोद्विजन्त्यल्पबुद्धयः ॥ ८ ॥

भरतनन्दन ! अपने कर्मरूपी इन महान् हिंसक जन्तुओंसे सदा सताये तथा रोके जानेपर भी मन्दबुद्धि मानव संसारसे उद्विग्न या विरक्त नहीं होते हैं ॥ ८ ॥

अथापि तैर्विमुच्येत व्याधिभिः पुरुषो नृप।
आवृणोत्येव तं पश्चाज्जरा रूपविनाशिनी ॥ ९ ॥
शब्दरूपरसस्पर्शैर्गन्धैश्च विविधैरपि।
मज्जमांसमहापङ्के निरालम्बे समन्ततः ॥ १० ॥

नरेश्वर ! यदि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और नाना प्रकारकी गन्धोंसे युक्त, मज्जा और मांसरूपी बड़ी भारी कीचड़से भरे हुए एवं सब ओरसे अवलम्बशून्य इस शरीररूपी कूपमें रहनेवाला मनुष्य इन व्याधियोंसे किसी तरह मुक्त हो जाय तो भी अन्तमें रूप-सौन्दर्यका विनाश करनेवाली वृद्धावस्था तो उसे घेर ही लेती है ॥ ९-१० ॥

संवत्सराश्च मासाश्च पक्षाहोरात्रसंधयः।
क्रमेणास्योपयुञ्जन्ति रूपमायुस्तथैव च ॥ ११ ॥
एते कालस्य निधयो नैताञ्जानन्ति दुर्बुधाः।
धात्राभिलिखितान्याहुः सर्वभूतानि कर्मणा ॥ १२ ॥

वर्ष, मास, पक्ष, दिन-रात और संध्याएँ क्रमशः इसके रूप और आयुका शोषण करती ही रहती हैं। ये सब कालके प्रतिनिधि हैं। मूढ़ मनुष्य इन्हें इस रूपमें नहीं जानते हैं। श्रेष्ठ पुरुषोंका कथन है कि विधाताने सम्पूर्ण भूतोंके ललाटमें कर्मके अनुसार रेखा खींच दी है (प्रारब्धके अनुसार उनकी आयु और सुख-दुःखके भोग नियत कर दिये हैं) ११-१२

रथः शरीरं भूतानां सत्त्वमाहुस्तु सारथिम्।
इन्द्रियाणि हयानाहुः कर्मबुद्धिस्तु रश्मयः ॥ १३ ॥
तेषां हयानां यो वेगं धावतामनुधावति।
स तु संसारचक्रेऽस्मिंश्चक्रवत् परिवर्तते ॥ १४ ॥

विद्वान् पुरुष कहते हैं कि प्राणियोंका शरीर रथके समान है, सत्त्व (सत्त्वगुणप्रधान बुद्धि) सारथि है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं और मन लगाम है। जो पुरुष स्वेच्छापूर्वक दौड़ते हुए उन घोड़ोंके वेगका अनुसरण करता है, वह तो इस संसारचक्रमें पहियेके समान घूमता रहता है ॥ १३-१४ ॥

यस्तान् संयमते बुद्ध्या संयतो न निवर्तते।
ये तु संसारचक्रेऽस्मिंश्चक्रवत् परिवर्तिते ॥ १५ ॥
भ्रममाणा न मुह्यन्ति संसारे न भ्रमन्ति ते।

किंतु जो संयमशील होकर बुद्धिके द्वारा उन इन्द्रियरूपी अश्वोंको काबूमें रखते हैं, वे फिर इस संसारमें नहीं लौटते। जो लोग चक्रकी भाँति घूमनेवाले इस संसारचक्रमें घूमते हुए भी मोहके वशीभूत नहीं होते हैं, उन्हें फिर संसारमें नहीं भटकना पड़ता ॥ १५½ ॥

संसारे भ्रमतां राजन् दुःखमेतद्धि जायते ॥ १६ ॥
तस्मादस्य निवृत्त्यर्थं यत्नमेवाचरेद् बुधः।
उपेक्षा नात्र कर्तव्या शतशाखः प्रवर्धते ॥ १७ ॥

राजन्! संसारमें भटकनेवालोंको यह दुःख प्राप्त होता ही है; अतः विज्ञ पुरुषको इस संसारबन्धनकी निवृत्तिके लिये अवश्य यत्न करना चाहिये। इस विषयमें कदापि उपेक्षा नहीं करनी चाहिये; नहीं तो यह संसार सैकड़ों शाखाओंमें फैलकर बहुत बड़ा हो जाता है ॥ १६-१७ ॥

यतेन्द्रियो नरो राजन् क्रोधलोभनिराकृतः।
संतुष्टः सत्यवादी यः स शान्तिमधिगच्छति ॥ १८ ॥

राजन् ! जो मनुष्य जितेन्द्रिय, क्रोध और लोभसे शून्य, संतोषी तथा सत्यवादी होता है, उसे शान्ति प्राप्त होती है ॥

याम्यमाहू रथं ह्येनं मुह्यन्ते येन दुर्बुधाः।
स चैतत् प्राप्नुयाद् राजन् यत् त्वं प्राप्तो नराधिप ॥ १९ ॥

नरेश्वर ! इस संसारको याम्य (यमलोककी प्राप्ति करानेवाला) रथ कहते हैं, जिससे मूर्ख मनुष्य मोहित हो जाते हैं। राजन्! जो दुःख आपको प्राप्त हुआ है, वही प्रत्येक अज्ञानी पुरुषको उपलब्ध होता है ॥ १९ ॥

अनुतर्षुलमेवैतद् दुःखं भवति मारिष।
राज्यनाशं सुहृन्नाशं सुतनाशं च भारत ॥ २० ॥

माननीय भारत ! जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है, उसीको राज्य, सुहृद् और पुत्रोंका नाशरूपी यह महान् दुःख प्राप्त होता है ॥ २० ॥

साधुः परमदुःखानां दुःखभैषज्यमाचरेत्।
ज्ञानौषधमवाप्येह दूरपारं महौषधम्।
छिन्द्याद् दुःखमहाव्याधिं नरः संयतमानसः ॥ २१ ॥

साधु पुरुषको चाहिये कि वह अपने मनको वशमें करके ज्ञानरूपी महान् ओषधि प्राप्त करे, जो परम दुर्लभ है। उससे अपने बड़े-से-बड़े दुःखोंकी चिकित्सा करे। उस ज्ञानरूपी ओषधिसे दुःखरूपी महान् व्याधिका नाश कर डाले २१

न विक्रमो न चाप्यर्थो न मित्रं न सुहृज्जनः।
तथोन्मोचयते दुःखाद् यथाऽऽत्मा स्थिरसंयमः ॥

पराक्रम, धन, मित्र और सुहृद् भी उस तरह दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकते, जैसा कि दृढ़तापूर्वक संयममें रहनेवाला अपना मन दिला सकता है ॥ २२ ॥

तस्मान्मैत्रं समास्थाय शीलमापद्य भारत।
दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्रह्मणो हयाः ॥ २३ ॥
शीलरश्मिसमायुक्तः स्थितो यो मानसे रथे।
त्यक्त्वा मृत्युभयं राजन् ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ २४ ॥

भरतनन्दन ! इसलिये सर्वत्र मैत्रीभाव रखते हुए शील प्राप्त करना चाहिये। दम, त्याग और अप्रमाद—ये तीन परमात्माके धाममें ले जानेवाले घोड़े हैं। जो मनुष्य शीलरूपी लगामको पकड़कर इन तीनों घोड़ोंसे जुते हुए मनरूपी रथपर सवार होता है, वह मृत्युका भय छोड़कर ब्रह्मलोकमें चला जाता है ॥ २३-२४ ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति महीपते।
स गच्छति परं स्थानं विष्णोः पदमनामयम् ॥ २५ ॥

भूपाल ! जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देता है, वह

भगवान् विष्णुके अविनाशी परमधाममें चला जाता है ॥ २५ ॥

न तत् क्रतुसहस्रेण नोपवासैश्च नित्यशः ।
अभयस्य च दानेन यत् फलं प्राप्नुयान्नरः ॥ २६ ॥

अभयदानसे मनुष्य जिस फलको पाता है, वह उसे सहस्रों यज्ञ और नित्यप्रति उपवास करनेसे भी नहीं मिल सकता है ॥ २६ ॥

न ह्यात्मनः प्रियतरं किंचिद् भूतेषु निश्चितम् ।
अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत ॥ २७ ॥
तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दया कार्या विपश्चिता ।

भारत ! यह बात निश्चितरूपसे कही जा सकती है कि प्राणियोंको अपने आत्मासे अधिक प्रिय कोई भी वस्तु नहीं है; इसीलिये मरना किसी भी प्राणीको अच्छा नहीं लगता; अतः विद्वान् पुरुषको सभी प्राणियोंपर दया करनी चाहिये ॥ २७½ ॥

नानामोहसमायुक्ता बुद्धिजालेन संवृताः ॥ २८ ॥
असूक्ष्मदृष्टयो मन्दा भ्राम्यन्ते तत्र तत्र ह ।

जो मूढ़ नाना प्रकारके मोहमें डूबे हुए हैं, जिन्हें बुद्धिके जालने बाँध रक्खा है और जिनकी दृष्टि स्थूल है, वे भिन्न-भिन्न योनियोंमें भटकते रहते हैं ॥ २८½ ॥

सुसूक्ष्मदृष्टयो राजन् व्रजन्ति ब्रह्म शाश्वतम् ॥ २९ ॥
(एवं ज्ञात्वा महाप्राज्ञ स तेषामौर्ध्वदैहिकम् ।
कर्तुमर्हति तेनैव फलं प्राप्स्यति वै भवान् ॥)

राजन् ! महाप्राज्ञ ! सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी पुरुष सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, ऐसा जानकर आप अपने मरे हुए सगे-सम्बन्धियोंका और्ध्वदैहिक संस्कार कीजिये । इसीसे आपको उत्तम फलकी प्राप्ति होगी ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३० श्लोक हैं)

अष्टमोऽध्यायः

व्यासजीका संहारको अवश्यम्भावी बताकर धृतराष्ट्रको समझाना

वैशम्पायन उवाच

विदुरस्य तु तद् वाक्यं निशम्य कुरुसत्तमः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः पपात भुवि मूर्छितः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! विदुरजीके ये वचन सुनकर कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे संतप्त एवं मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १ ॥

तं तथा पतितं भूमौ निःसंज्ञं प्रेक्ष्य बान्धवाः ।
कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षत्ता च विदुरस्तथा ॥ २ ॥
संजयः सुहृदश्चान्ये द्वाःस्था ये चास्य सम्मताः ।
जलेन सुखशीतेन तालवृन्तैश्च भारत ॥ ३ ॥
पस्पृशुश्च करैर्गात्रं वीजमानाश्च यत्नतः ।
अन्वासन् सुचिरं कालं धृतराष्ट्रं तथागतम् ॥ ४ ॥

उन्हें इस प्रकार अचेत होकर भूमिपर गिरा देख सभी भाई-बन्धु, व्यासजी, विदुर, संजय, सुहृद्गण तथा जो विश्वसनीय द्वारपाल थे, वे सभी शीतल जलके छींटे देकर ताड़के पङ्खोंसे हवा करने और उनके शरीरपर हाथ फेरने लगे । उस बेहोशीकी अवस्थामें वे बड़े यत्नके साथ धृतराष्ट्रको होशमें लानेके लिये देरतक आवश्यक उपचार करते रहे ॥

अथ दीर्घस्य कालस्य लब्धसंज्ञो महीपतिः ।
विललाप चिरं कालं पुत्राधिभिरभिप्लुतः ॥ ५ ॥

तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् राजा धृतराष्ट्रको चेत हुआ और वे पुत्रोंकी चिन्तामें डूबकर बड़ी देरतक विलाप करते रहे ॥ ५ ॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं मानुषेषु परिग्रहे ।
यतो मूलानि दुःखानि सम्भवन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥

वे बोले—'इस मनुष्यजन्मको धिक्कार है ! इसमें भी विवाह आदि करके परिवार बढ़ाना तो और भी बुरा है; क्योंकि उसीके कारण बारंबार नाना प्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

पुत्रनाशेऽर्थनाशे च ज्ञातिसम्बन्धिनामथ ।
प्राप्यते सुमहद् दुःखं विषाग्निप्रतिमं विभो ॥ ७ ॥

'प्रभो ! पुत्र, धन, कुटुम्ब और सम्बन्धियोंका नाश होनेपर तो विष पीने और आगमें जलनेके समान बड़ा भारी दुःख भोगना पड़ता है ॥ ७ ॥

येन दह्यन्ति गात्राणि येन प्रज्ञा विनश्यति ।
येनाभिभूतः पुरुषो मरणं बहु मन्यते ॥ ८ ॥

'उस दुःखसे सारा शरीर जलने लगता है, बुद्धि नष्ट हो जाती है और उस असह्य शोकसे पीड़ित हुआ पुरुष जीनेकी अपेक्षा मर जाना अधिक अच्छा समझता है ॥ ८ ॥

तदिदं व्यसनं प्राप्तं मया भाग्यविपर्ययात् ।
तस्यान्तं नाधिगच्छामि ऋते प्राणविमोक्षणात् ॥ ९ ॥

'आज भाग्यके फेरसे वही यह स्वजनोंके विनाशका महान् दुःख मुझे प्राप्त हुआ है । अब प्राण त्याग देनेके सिवा और किसी उपायद्वारा मैं इस दुःखसे पार नहीं पा सकता ॥ ९ ॥

तथैवाहं करिष्यामि अद्यैव द्विजसत्तम ।
इत्युक्त्वा तु महात्मानं पितरं ब्रह्मवित्तमम् ॥ १० ॥
धृतराष्ट्रोऽभवन्मूढः स शोकं परमं गतः ।
अभूच्च तूष्णीं राजासौ ध्यायमानो महीपते ॥ ११ ॥

'द्विजश्रेष्ठ ! इसलिये आज ही मैं अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगा ।' अपने ब्रह्मवेत्ता पिता महात्मा व्यासजीसे ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त शोकमें डूब गये और सुध-बुध खो बैठे । राजन् ! पुत्रोंका ही चिन्तन करते हुए वे बूढ़े नरेश वहाँ मौन होकर बैठे रह गये ॥ १०-११ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं पुत्रं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

उनकी बात सुनकर शक्तिशाली महात्मा श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास पुत्रशोकसे संतप्त हुए अपने बेटेसे इस प्रकार बोले—॥

व्यास उवाच

धृतराष्ट्र महाबाहो यत् त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ।
श्रुतवानसि मेधावी धर्मार्थकुशलः प्रभो ॥ १३ ॥

व्यासजीने कहा—महाबाहु धृतराष्ट्र ! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो । प्रभो ! तुम वेद-शास्त्रोंके ज्ञानसे सम्पन्न, मेधावी तथा धर्म और अर्थके साधनमें कुशल हो ॥ १३ ॥

न तेऽस्त्यविदितं किंचिद् वेदितव्यं परंतप ।
अनित्यतां हि मर्त्यानां विजानासि न संशयः ॥ १४ ॥

शत्रुसंतापी नरेश ! जानने योग्य जो कोई भी तत्त्व है, वह तुमसे अज्ञात नहीं है । तुम मानव-जीवनकी अनित्यताको अच्छी तरह जानते हो, इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥

अध्रुवे जीवलोके च स्थाने वा शाश्वते सति ।
जीविते मरणान्ते च कस्माच्छोचसि भारत ॥ १५ ॥

भरतनन्दन ! जब जीव-जगत् अनित्य है, सनातन परम पद नित्य है और इस जीवनका अन्त मृत्युमें ही है, तब तुम इसके लिये शोक क्यों करते हो ? ॥ १५ ॥

प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र वैरस्यास्य समुद्भवः ।
पुत्रं ते कारणं कृत्वा कालयोगेन कारितः ॥ १६ ॥

राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्रको निमित्त बनाकर कालकी प्रेरणासे इस वैरकी उत्पत्ति तो तुम्हारे सामने ही हुई थी ॥ १६ ॥

अवश्यं भवितव्ये च कुरूणां वैशसे नृप ।
कस्माच्छोचसि ताञ्शूरान् गतान् परमिकां गतिम् ॥

नरेश्वर ! जब कौरवोंका यह विनाश अवश्यम्भावी था, तब परम गतिको प्राप्त हुए उन शूरवीरोंके लिये तुम क्यों शोक कर रहे हो ? ॥ १७ ॥

जानता च महाबाहो विदुरेण महात्मना ।
यतितं सर्वयत्नेन शमं प्रति जनेश्वर ॥ १८ ॥

महाबाहु नरेश्वर ! महात्मा विदुर इस भावी परिणामको जानते थे, इसीलिये इन्होंने सारी शक्ति लगाकर संधिके लिये प्रयत्न किया था ॥ १८ ॥

न च दैवकृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित् ।
घटतापि चिरं कालं नियन्तुमिति मे मतिः ॥ १९ ॥

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि दीर्घ कालतक प्रयत्न करके भी कोई प्राणी दैवके विधानको रोक नहीं सकता ॥ १९ ॥

देवतानां हि यत् कार्यं मया प्रत्यक्षतः श्रुतम् ।
तत् तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यथा स्थैर्यं भवेत् तव ॥ २० ॥

देवताओंका जो कार्य मैंने प्रत्यक्ष अपने कानोंसे सुना है, वह तुम्हें बता रहा हूँ, जिससे तुम्हारा मन स्थिर हो सके॥

पुराहं त्वरितो यातः सभामैन्द्रीं जितक्लमः ।
अपश्यं तत्र च तदा समवेतान् दिवौकसः ॥ २१ ॥

पूर्वकालकी बात है, एक बार मैं यहाँसे शीघ्रतापूर्वक इन्द्रकी सभामें गया । वहाँ जानेपर भी मुझे कोई थकावट नहीं हुई; क्योंकि मैं इन सबपर विजय पा चुका हूँ । वहाँ उस समय मैंने देखा कि इन्द्रकी सभामें सम्पूर्ण देवता एकत्र हुए हैं ॥ २१ ॥

नारदप्रमुखाश्चापि सर्वे देवर्षयोऽनघ ।
तत्र चापि मया दृष्टा पृथिवी पृथिवीपते ॥ २२ ॥
कार्यार्थमुपसम्प्राप्ता देवतानां समीपतः ।

अनघ ! वहाँ नारद आदि समस्त देवर्षि भी उपस्थित थे । पृथ्वीनाथ ! मैंने वहीं इस पृथ्वीको भी देखा, जो किसी कार्यके लिये देवताओंके पास गयी थी ॥ २२½ ॥

उपगम्य तदा धात्री देवानाह समागतान् ॥ २३ ॥
यत् कार्यं मम युष्माभिर्ब्रह्मणः सदने तदा ।
प्रतिज्ञातं महाभागास्तच्छीघ्रं संविधीयताम् ॥ २४ ॥

उस समय विश्वधारिणी पृथ्वीने वहाँ एकत्र हुए देवताओंके पास जाकर कहा—'महाभाग देवताओ ! आपलोगोंने उस दिन ब्रह्माजीकी सभामें मेरे जिस कार्यको सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसे शीघ्र पूर्ण कीजिये' ॥ २३-२४ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा विष्णुर्लोकनमस्कृतः ।
उवाच वाक्यं प्रहसन् पृथिवीं देवसंसदि ॥ २५ ॥
धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां यस्तु ज्येष्ठः शतस्य वै ।
दुर्योधन इति ख्यातः स ते कार्यं करिष्यति ॥ २६ ॥
तं च प्राप्य महीपालं कृतकृत्या भविष्यसि ।

उसकी बात सुनकर विश्ववन्दित भगवान् विष्णुने देवसभामें पृथ्वीकी ओर देखकर हँसते हुए कहा—'शुभे ! धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमें जो सबसे बड़ा और दुर्योधननामसे विख्यात है, वही तेरा कार्य सिद्ध करेगा । उसे राजाके रूपमें पाकर तू कृतार्थ हो जायगी ॥ २५-२६½ ॥

तस्यार्थे पृथिवीपालाः कुरुक्षेत्रं समागताः ॥ २७ ॥
अन्योन्यं घातयिष्यन्ति दृढैः शस्त्रैः प्रहारिणः ।

'उसके लिये सारे भूपाल कुरुक्षेत्रमें एकत्र होंगे और सुदृढ़ शस्त्रोंद्वारा परस्पर प्रहार करके एक दूसरेका वध कर डालेंगे ॥ २७½ ॥

ततस्ते भविता देवि भारस्य युधि नाशनम् ॥ २८ ॥
गच्छ शीघ्रं स्वकं स्थानं लोकान् धारय शोभने ।

'देवि ! इस प्रकार उस युद्धमें तेरे भारका नाश हो जायगा । शोभने ! अब तू शीघ्र अपने स्थानपर जा और समस्त लोकोंको पूर्ववत् धारण कर' ॥ २८½ ॥

य एष ते सुतो राजन् लोकसंहारकारणात् ॥ २९ ॥
कलेरंशः समुत्पन्नो गान्धार्या जठरे नृप ।
अमर्षी चपलश्चापि क्रोधनो दुष्प्रसाधनः ॥ ३० ॥

राजन् ! नरेश्वर ! यह जो तुम्हारा पुत्र दुर्योधन था, वह सारे जगत्का संहार करनेके लिये कलिका मूर्तिमान् अंश ही गान्धारीके पेटसे पैदा हुआ था । वह अमर्षशील, क्रोधी, चञ्चल और कूटनीतिसे काम लेनेवाला था ॥ २९-३० ॥

दैवयोगात् समुत्पन्ना भ्रातरश्चास्य तादृशाः ।
शकुनिर्मातुलश्चैव कर्णश्च परमः सखा ॥ ३१ ॥

दैवयोगसे उसके भाई भी वैसे ही उत्पन्न हुए । मामा शकुनि और परम मित्र कर्ण भी उसी विचारके मिल गये ॥

समुत्पन्ना विनाशार्थं पृथिव्यां सहिता नृपाः ।
यादृशो जायते राजा तादृशोऽस्य जनो भवेत् ॥ ३२ ॥

ये सब नरेश शत्रुओंका विनाश करनेके लिये ही एक साथ इस भूमण्डलपर उत्पन्न हुए थे । जैसा राजा होता है, वैसे ही उसके स्वजन और सेवक भी होते हैं ॥ ३२ ॥

अधर्मो धर्मतां याति स्वामी चेद् धार्मिको भवेत् ।
स्वामिनो गुणदोषाभ्यां भृत्याः स्युर्नात्र संशयः॥ ३३ ॥

यदि स्वामी धार्मिक हो तो अधर्मी सेवक भी धार्मिक बन जाते हैं । सेवक स्वामीके ही गुण-दोषोंसे युक्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥

दुष्टं राजानमासाद्य गतास्ते तनया नृप ।
एतमर्थं महाबाहो नारदो वेद तत्त्ववित् ॥ ३४ ॥

महाबाहु नरेश्वर ! दुष्ट राजाको पाकर तुम्हारे सभी पुत्र उसीके साथ नष्ट हो गये । इस बातको तत्त्ववेत्ता नारदजी जानते हैं ॥ ३४ ॥

आत्मापराधात् पुत्रास्ते विनष्टाः पृथिवीपते ।
मा ताञ्शोचस्व राजेन्द्र न हि शोकेऽस्ति कारणम् ॥

पृथ्वीनाथ ! आपके पुत्र अपने ही अपराधसे विनाशको प्राप्त हुए हैं । राजेन्द्र ! उनके लिये शोक न करो; क्योंकि शोकके लिये कोई उपयुक्त कारण नहीं है ॥ ३५ ॥

न हि ते पाण्डवाः स्वल्पमपराध्यन्ति भारत ।
पुत्रास्तव दुरात्मानो यैरियं घातिता मही ॥ ३६ ॥

भारत ! पाण्डवोंने तुम्हारा थोड़ा-सा भी अपराध नहीं किया है । तुम्हारे पुत्र ही दुष्ट थे, जिन्होंने इस भूमण्डलका नाश करा दिया ॥ ३६ ॥

नारदेन च भद्रं ते पूर्वमेव न संशयः ।
युधिष्ठिरस्य समितौ राजसूये निवेदितम् ॥ ३७ ॥
पाण्डवाः कौरवाः सर्वे समासाद्य परस्परम् ।
न भविष्यन्ति कौन्तेय यत् ते कृत्यं तदाचर ॥ ३८ ॥

राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो । राजसूय यज्ञके समय देवर्षि नारदने राजा युधिष्ठिरकी सभामें निःसंदेह पहले ही यह बात बता दी थी कि कौरव और पाण्डव सभी आपसमें लड़कर नष्ट हो जायँगे; अतः कुन्तीनन्दन ! तुम्हारे लिये जो आवश्यक कर्तव्य हो, उसे करो ॥ ३७-३८ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा तदाशोचन्त पाण्डवाः ।
एवं ते सर्वमाख्यातं देवगुह्यं सनातनम् ॥ ३९ ॥
कथं ते शोकनाशः स्यात् प्राणेषु च दया प्रभो ।
स्नेहश्च पाण्डुपुत्रेषु ज्ञात्वा दैवकृतं विधिम् ॥ ४० ॥

प्रभो ! नारदजीकी वह बात सुनकर उस समय पाण्डव बहुत चिन्तित हो गये थे । इस प्रकार मैंने तुमसे देवताओं-का यह सारा सनातन रहस्य बताया है, जिससे किसी तरह तुम्हारे शोकका नाश हो । तुम अपने प्राणोंपर दया कर सको और देवताओंका विधान समझकर पाण्डुके पुत्रोंपर भी तुम्हारा स्नेह बना रहे ॥ ३९-४० ॥

एष चार्थो महाबाहो पूर्वमेव मया श्रुतः ।
कथितो धर्मराजस्य राजसूये क्रतूत्तमे ॥ ४१ ॥

महाबाहो ! यह बात मैंने बहुत पहले ही सुन रक्खी थी और क्रतुश्रेष्ठ राजसूयमें धर्मराज युधिष्ठिरको बता भी दी थी॥

यतितं धर्मपुत्रेण मया गुह्ये निवेदिते ।
अविग्रहे कौरवाणां दैवं तु बलवत्तरम् ॥ ४२ ॥

मेरेद्वारा उस गुप्त रहस्यके बता दिये जानेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने बहुत प्रयत्न किया कि कौरवोंमें परस्पर कलह न हो; परंतु दैवका विधान बड़ा प्रबल होता है ॥ ४२ ॥

अनतिक्रमणीयो हि विधी राजन् कथंचन ।
कृतान्तस्य तु भूतेन स्थावरेण चरेण च ॥ ४३ ॥

राजन् ! दैव अथवा कालके विधानको चराचर प्राणियोंमें-से कोई भी किसी तरह लाँघ नहीं सकता ॥ ४३ ॥

भवान् धर्मपरो यत्र बुद्धिश्रेष्ठश्च भारत ।
मुह्यते प्राणिनां ज्ञात्वा गतिं चागतिमेव च ॥ ४४ ॥

भरतनन्दन ! तुम धर्मपरायण और बुद्धिमें श्रेष्ठ हो । तुम्हें प्राणियोंके आवागमनका रहस्य भी ज्ञात है, तो भी क्यों मोहके वशीभूत हो रहे हो ? ॥ ४४ ॥

त्वां तु शोकेन संतप्तं मुह्यमानं मुहुर्मुहुः ।
ज्ञात्वा युधिष्ठिरो राजा प्राणानपि परित्यजेत् ॥ ४५ ॥

तुम्हें बारंबार शोकसे संतप्त और मोहित होते जानकर राजा युधिष्ठिर अपने प्राणोंका भी परित्याग कर देंगे ॥४५॥

कृपालुर्नित्यशो वीरस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
स कथं त्वयि राजेन्द्र कृपां नैव करिष्यति ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र ! वीर युधिष्ठिर पशु-पक्षी आदि योनिके प्राणियों-पर भी सदा दयाभाव बनाये रखते हैं; फिर तुमपर वे कैसे दया नहीं करेंगे ? ॥ ४६ ॥

मम चैव नियोगेन विधेश्चाप्यनिवर्तनात् ।
पाण्डवानां च कारुण्यात् प्राणान् धारय भारत ॥४७॥

अतः भारत ! मेरी आज्ञा मानकर, विधाताका विधान टल नहीं सकता, ऐसा समझकर तथा पाण्डवोंपर करुणा करके तुम अपने प्राण धारण करो ॥ ४७ ॥

एवं ते वर्तमानस्य लोके कीर्तिर्भविष्यति ।
धर्मार्थः सुमहांस्तात तप्तं स्याच्च तपश्चिरात् ॥ ४८ ॥

तात ! ऐसा बर्ताव करनेसे संसारमें तुम्हारी कीर्ति बढ़ेगी, महान् धर्म और अर्थकी सिद्धि होगी तथा दीर्घ कालतक तपस्या करनेका तुम्हें फल प्राप्त होगा ॥ ४८ ॥

पुत्रशोकं समुत्पन्नं हुताशं ज्वलितं यथा ।
प्रज्ञाम्भसा महाभाग निर्वापय सदा सदा ॥ ४९ ॥

महाभाग ! प्रज्वलित आगके समान जो तुम्हें यह पुत्र-शोक प्राप्त हुआ है, इसे विचाररूपी जलके द्वारा सदाके लिये बुझा दो ॥ ४९ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा तस्य वचनं व्यासस्यामिततेजसः ।
मुहूर्तं समनुध्यायन् धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ॥ ५० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! अमिततेजस्वी व्यासजीका यह वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र दो घड़ीतक कुछ सोच-विचार करते रहे; फिर इस प्रकार बोले—॥ ५० ॥

महता शोकजालेन प्रणुन्नोऽस्मि द्विजोत्तम ।
नात्मानमवबुध्यामि मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ॥ ५१ ॥

'विप्रवर ! मुझे महान् शोकजालने सब ओरसे जकड़ रक्खा है । मैं अपने आपको ही नहीं समझ पा रहा हूँ । मुझे बारंबार मूर्छा आ जाती है ॥ ५१ ॥

इदं तु वचनं श्रुत्वा तव देवनियोगजम् ।
धारयिष्याम्यहं प्राणान् घटिष्ये न तु शोचितुम् ॥ ५२ ॥

'अब आपका यह वचन सुनकर कि सब कुछ देवताओंकी प्रेरणासे हुआ है, मैं अपने प्राण धारण करूँगा और यथाशक्ति इस बातके लिये भी प्रयत्न करूँगा कि मुझे शोक न हो'॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासः सत्यवतीसुतः ।
धृतराष्ट्रस्य राजेन्द्र तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५३ ॥

राजेन्द्र ! धृतराष्ट्रका यह वचन सुनकर सत्यवतीनन्दन व्यास वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥८॥

नवमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका शोकातुर हो जाना और विदुरजीका उन्हें पुनः शोकनिवारणके लिये उपदेश

जनमेजय उवाच

गते भगवति व्यासे धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
किमचेष्टत विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—विप्रर्षे ! भगवान् व्यासके चले जानेपर राजा धृतराष्ट्रने क्या किया ? यह मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें ॥ १ ॥

तथैव कौरवो राजा धर्मपुत्रो महामनाः ।
कृपप्रभृतयश्चैव किमकुर्वत ते त्रयः ॥ २ ॥

इसी प्रकार कुरुवंशी राजा महामनस्वी धर्मपुत्र युधिष्ठिरने तथा कृप आदि तीनों महारथियोंने क्या किया ? ॥ २ ॥

अश्वत्थाम्नः श्रुतं कर्म शापश्चान्योन्यकारितः ।
वृत्तान्तमुत्तरं ब्रूहि यदभाषत संजयः ॥ ३ ॥

अश्वत्थामाका कर्म तो मैंने सुन लिया, परस्पर जो शाप दिये गये, उनका हाल भी मालूम हो गया । अब आगेका वृत्तान्त बताइये, जिसे संजयने धृतराष्ट्रको सुनाया हो ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

हते दुर्योधने चैव हते सैन्ये च सर्वशः ।
संजयो विगतप्रज्ञो धृतराष्ट्रमुपस्थितः ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! दुर्योधन तथा उसकी सारी सेनाओंके मारे जानेपर संजयकी दिव्य दृष्टि चली गयी और वह धृतराष्ट्रकी सभामें उपस्थित हुआ ॥ ४ ॥

संजय उवाच

आगम्य नानादेशेभ्यो नानाजनपदेश्वराः ।
पितृलोकं गता राजन् सर्वे तव सुतैः सह ॥ ५ ॥

संजय बोला—राजन् ! नाना जनपदोंके स्वामी विभिन्न देशोंसे आकर सब-के-सब आपके पुत्रोंके साथ पितृलोकके पथिक बन गये ॥ ५ ॥

याच्यमानेन सततं तव पुत्रेण भारत ।
घातिता पृथिवी सर्वा वैरस्यान्तं विधित्सता ॥ ६ ॥

भारत ! आपके पुत्रसे सब लोगोंने सदा शान्तिके लिये याचना की, तो भी उसने वैरका अन्त करनेकी इच्छासे सारे भूमण्डलका विनाश करा दिया ॥ ६ ॥

पुत्राणामथ पौत्राणां पितॄणां च महीपते ।
आनुपूर्व्येण सर्वेषां प्रेतकार्याणि कारय ॥ ७ ॥

महाराज ! अब आप क्रमशः अपने ताऊ, चाचा, पुत्र और पौत्रोंका मृतकसम्बन्धी कर्म करवाइये ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं घोरं संजयस्य महीपतिः ।
गतासुरिव निश्चेष्टो न्यपतत् पृथिवीतले ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! संजयका यह घोर वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र प्राणशून्यकी भाँति निश्चेष्ट हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८ ॥

तं शयानमुपागम्य पृथिव्यां पृथिवीपतिम् ।
विदुरः सर्वधर्मज्ञ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

पृथ्वीपति धृतराष्ट्रको पृथ्वीपर सोया देख सब धर्मोंके ज्ञाता विदुरजी उनके पास आये और इस प्रकार बोले—॥९॥

उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे मा शुचो भरतर्षभ ।
एषा वै सर्वसत्त्वानां लोकेश्वर परा गतिः ॥ १० ॥

'राजन् ! उठिये, क्यों सो रहे हैं ? भरतश्रेष्ठ ! शोक न कीजिये । लोकनाथ ! समस्त प्राणियोंकी यही अन्तिम गति है॥

अभावादीनि भूतानि भावमध्यानि भारत ।
अभावनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ ११ ॥

'भरतनन्दन ! सभी प्राणी जन्मसे पहले अव्यक्त थे, बीचमें व्यक्त हुए और अन्तमें मृत्युके बाद फिर अव्यक्त ही हो जायँगे, ऐसी दशामें उनके लिये शोक करनेकी क्या बात है ? ॥ ११ ॥

न शोचन् मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः ।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि ॥ १२ ॥

'शोक करनेवाला मनुष्य न तो मरे हुएके साथ जाता है और न स्वयं ही मरता है। जब लोककी यही स्वाभाविक स्थिति है, तब आप किस लिये बारंबार शोक कर रहे हैं ?॥

अयुध्यमानो म्रियते युद्ध्यमानस्तु जीवति।
कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्तते॥ १३॥

'महाराज! जो युद्ध नहीं करता, वह भी मरता है और युद्ध करनेवाला भी जीवित बच जाता है। कालको पाकर कोई भी उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता॥ १३॥

कालः कर्षति भूतानि सर्वाणि विविधानि च।
न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम॥ १४॥

'काल सभी विविध प्राणियोंको खींचता है। कुरुश्रेष्ठ! कालके लिये न तो कोई प्रिय है और न कोई द्वेषका पात्र ही॥ १४॥

यथा वायुस्तृणाग्राणि संवर्तयति सर्वतः।
तथा कालवशं यान्ति भूतानि भरतर्षभ॥ १५॥

'भरतश्रेष्ठ! जैसे वायु तिनकोंको सब ओर उड़ाती और गिराती रहती है, उसी प्रकार सारे प्राणी कालके अधीन होकर आते-जाते रहते हैं॥ १५॥

एकसार्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम्।
यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना॥ १६॥

'एक साथ आये हुए सभी प्राणियोंको एक दिन वहीं जाना है। जिसका काल आ गया, वह पहले चला जाता है; फिर उसके लिये व्यर्थ शोक क्यों?॥ १६॥

यांश्चापि निहतान् युद्धे राजंस्त्वमनुशोचसि।
न शोच्या हि महात्मानः सर्वे ते त्रिदिवं गताः॥ १७॥

'राजन्! जो लोग युद्धमें मारे गये हैं और जिनके लिये आप बारंबार शोक कर रहे हैं, वे महामनस्वी वीर शोक करनेके योग्य नहीं हैं, वे सब-के-सब स्वर्गलोकमें चले गये॥

न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया।
तथा स्वर्गमुपायान्ति यथा शूरास्तनुत्यजः॥ १८॥

'अपने शरीरका त्याग करनेवाले शूरवीर जिस तरह स्वर्गमें जाते हैं, उस तरह दक्षिणावाले यज्ञों, तपस्याओं तथा विद्यासे भी कोई नहीं जा सकता॥ १८॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः।
सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिदेवना॥ १९॥

'वे सभी वीर वेदवेत्ता और अच्छी तरह ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले थे। ये सब-के-सब शत्रुओंका सामना करते हुए मारे गये थे; अतः उनके लिये शोक करनेकी क्या आवश्यकता है?॥ १९॥

शरीराग्निषु शूराणां जुहुवुस्ते शराहुतीः।
हूयमानाञ्शरांश्चैव सेहुरुत्तमपूरुषाः॥ २०॥

'उन श्रेष्ठ पुरुषोंने शूरवीरोंके शरीररूपी अग्नियोंमें बाणरूपी हविष्यकी आहुतियाँ दी थीं और अपने शरीरमें जिनका हवन किया गया था, उन बाणोंका आघात सहन किया था॥ २०॥

एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमम्।
न युद्धादधिकं किंचित् क्षत्रियस्येह विद्यते॥ २१॥

'राजन्! मैं तुम्हें स्वर्ग-प्राप्तिका सबसे उत्तम मार्ग बता रहा हूँ। इस जगत्में क्षत्रियके लिये युद्धसे बढ़कर स्वर्ग-साधक दूसरा कोई उपाय नहीं है॥ २१॥

क्षत्रियास्ते महात्मानः शूराः समितिशोभनाः।
आशिषं परमां प्राप्ता न शोच्याः सर्व एव हि॥ २२॥

'वे सभी महामनस्वी क्षत्रिय-वीर युद्धमें शोभा पानेवाले थे। वे उत्तम भोगोंसे सम्पन्न पुण्यलोकोंमें जा पहुँचे हैं, अतः उन सबके लिये शोक नहीं करना चाहिये॥ २२॥

आत्मनाऽऽत्मानमाश्वास्य मा शुचः पुरुषर्षभ।
नाद्य शोकाभिभूतस्त्वं कार्यमुत्स्रष्टुमर्हसि॥ २३॥

'पुरुषप्रवर! आप स्वयं ही अपने मनको आश्वासन देकर शोकको त्याग दीजिये। आज शोकसे व्याकुल होकर आपको अपने कर्तव्य कर्मका त्याग नहीं करना चाहिये'॥ २३॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि विदुरवाक्ये नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें विदुरजीका वाक्यविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दशमोऽध्यायः

स्त्रियों और प्रजाके लोगोंके सहित राजा धृतराष्ट्रका रणभूमिमें जानेके लिये नगरसे बाहर निकलना

वैशम्पायन उवाच

विदुरस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा तु पुरुषर्षभः।
युज्यतां यानमित्युक्त्वा पुनर्वचनमब्रवीत्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! विदुरकी यह बात सुनकर पुरुषश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रने रथ जोतनेकी आज्ञा देकर पुनः इस प्रकार कहा॥ १॥

धृतराष्ट्र उवाच

शीघ्रमानय गान्धारीं सर्वाश्च भरतस्त्रियः।
वधूं कुन्तीमुपादाय याश्चान्यास्तत्र योषितः॥ २॥

धृतराष्ट्र बोले—गान्धारीको तथा भरतवंशी अन्य सब स्त्रियोंको शीघ्र ले आओ तथा वधू कुन्तीको साथ लेकर वहाँ जो दूसरी स्त्रियाँ हों, उन्हें भी बुला लो॥ २॥

एवमुक्त्वा स धर्मात्मा विदुरं धर्मवित्तमम्।
शोकविप्रहतज्ञानो यानमेवान्वपद्यत॥ ३॥

परम धर्मज्ञ विदुरजीसे ऐसा कहकर शोकसे जिनकी ज्ञानशक्ति नष्ट-सी हो गयी थी, वे धर्मात्मा राजा धृतराष्ट्र रथपर सवार हुए॥ ३॥

गान्धारी पुत्रशोकार्ता भर्तुर्वचननोदिता।
सह कुन्त्या यतो राजा सह स्त्रीभिरुपाद्रवत्॥ ४॥

गान्धारी पुत्रशोकसे पीड़ित हो रही थीं, पतिकी आज्ञा

पाकर वे कुन्ती तथा अन्य स्त्रियोंके साथ जहाँ राजा धृतराष्ट्र थे, वहाँ आयीं ॥ ४ ॥

ताः समासाद्य राजानं भृशं शोकसमन्विताः ।
आमन्त्र्यान्योन्यमीयुः स्म भृशमुच्चुक्रुशुस्ततः ॥ ५ ॥

वहाँ राजाके पास पहुँचकर अत्यन्त शोकमें डूबी हुई वे सारी स्त्रियाँ एक दूसरीको पुकार-पुकारकर परस्पर गलेसे लग गयीं और जोर-जोरसे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ५ ॥

ताः समाश्वासयत् क्षत्ता ताभ्यश्चार्ततरः स्वयम् ।
अश्रुकण्ठीः समारोप्य ततोऽसौ निर्ययौ पुरात् ॥ ६ ॥

विदुरजीने उन सब स्त्रियोंको आश्वासन दिया । वे स्वयं भी उनसे अधिक आर्त हो गये थे । आँसुओंसे गद्गद कण्ठ हुई उन सबको रथपर चढ़ाकर वे नगरसे बाहर निकले ॥ ६ ॥

ततः प्रणादः संजज्ञे सर्वेषु कुरुवेश्मसु ।
आकुमारं पुरं सर्वमभवच्छोककर्षितम् ॥ ७ ॥

तदनन्तर कौरवोंके सभी घरोंमें बड़ा भारी आर्तनाद होने लगा । बूढ़ोंसे लेकर बच्चोंतक सारा नगर शोकसे व्याकुल हो उठा ॥ ७ ॥

अदृष्टपूर्वा या नार्यः पुरा देवगणैरपि ।
पृथग्जनेन दृश्यन्ते तास्तदा निहतेश्वराः ॥ ८ ॥

जिन स्त्रियोंको पहले कभी देवताओंने भी नहीं देखा था, उन्हींको उस समय पतियोंके मारे जानेपर साधारण लोग देख रहे थे ॥ ८ ॥

प्रकीर्य केशान् सुशुभान् भूषणान्यवमुच्य च ।
एकवस्त्रधरा नार्यः परिपेतुरनाथवत् ॥ ९ ॥

वे नारियाँ अपने सुन्दर केश बिखराये सारे अभूषण उतारकर एक ही वस्त्र धारण किये अनाथकी भाँति रणभूमिकी ओर जा रही थीं ॥ ९ ॥

श्वेतपर्वतरूपेभ्यो गृहेभ्यस्तास्त्वपाक्रमन् ।
गुहाभ्य इव शैलानां पृषत्यो हतयूथपाः ॥ १० ॥

कौरवोंके घर श्वेत पर्वतके समान जान पड़ते थे । उनसे जब वे स्त्रियाँ बाहर निकलीं, उस समय जिनका यूथपति मारा गया हो, पर्वतोंकी गुफासे निकली हुई उन चितकबरी हरिणियोंके समान दिखायी देने लगीं ॥ १० ॥

तान्युदीर्णानि नारीणां तदा वृन्दान्यनेकशः ।
शोकार्तान्यद्रवन् राजन् किशोरीणामिवाङ्गने ॥ ११ ॥

राजन् ! राजभवनके विशाल आँगनमें एकत्र हुई उन किशोरी स्त्रियोंके अनेक समुदाय शोकसे पीड़ित होकर रणभूमिकी ओर उसी प्रकार चले, जैसे बछेड़ियाँ शिक्षाभूमिपर लायी जाती हैं ॥

प्रगृह्य बाहून् क्रोशन्त्यः पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄनपि ।
दर्शयन्तीव ता ह स्म युगान्ते लोकसंक्षयम् ॥ १२ ॥

एक दूसरीके हाथ पकड़कर पुत्रों, भाइयों और पिताओंके नाम ले-लेकर रोती हुई वे कुरुकुलकी नारियाँ प्रलयकालमें लोक-संहारका दृश्य दिखाती हुई-सी जान पड़ती थीं ॥ १२ ॥

विलपन्त्यो रुदत्यश्च धावमानास्ततस्ततः ।
शोकेनोपहतज्ञानाः कर्तव्यं न प्रजज्ञिरे ॥ १३ ॥

शोकसे उनकी ज्ञानशक्ति लुप्त-सी हो गयी थी । वे रोती और विलाप करती हुई इधर-उधर दौड़ रही थीं । उन्हें कोई कर्तव्य नहीं सूझ रहा था ॥ १३ ॥

व्रीडां जग्मुः पुरा याः स्म सखीनामपि योषितः ।
ता एकवस्त्रा निर्लज्जाः श्वश्रूणां पुरतोऽभवन् ॥ १४ ॥

जो युवतियाँ पहले सखियोंके सामने आनेमें भी लजाती थीं, वे ही उस दिन लाज छोड़कर एक वस्त्र धारण किये अपनी सासुओंके सामने उपस्थित हो गयी थीं ॥ १४ ॥

परस्परं सुसूक्ष्मेषु शोकेष्वाश्वासयंस्तदा ।
ताः शोकविह्वला राजन्नवैक्षन्त परस्परम् ॥ १५ ॥

राजन् ! जो नारियाँ छोटे-से-छोटे शोकमें भी एक दूसरीके पास जाकर आश्वासन दिया करती थीं, वे ही शोकसे व्याकुल हो परस्पर दृष्टिपात मात्र कर रही थीं ॥ १५ ॥

ताभिः परिवृतो राजा रुदतीभिः सहस्रशः ।
निर्ययौ नगराद् दीनस्तूर्णमायोधनं प्रति ॥ १६ ॥

उन रोती हुई सहस्रों स्त्रियोंसे घिरे हुए दुखी राजा धृतराष्ट्र नगरसे युद्धस्थलमें जानेके लिये तुरंत निकल पड़े ॥

शिल्पिनो वणिजो वैश्याः सर्वकर्मोपजीविनः ।
ते पार्थिवं पुरस्कृत्य निर्ययुर्नगराद् बहिः ॥ १७ ॥

कारीगर, व्यापारी वैश्य तथा सब प्रकारके कर्मोंसे जीवन-निर्वाह करनेवाले लोग राजाको आगे करके नगरसे बाहर निकले ॥ १७ ॥

तासां विक्रोशमानानामार्तानां कुरुसंक्षये ।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दो व्यथयन् भुवनान्युत ॥ १८ ॥

कौरवोंका संहार हो जानेपर आर्तभावसे रोती और विलपती हुई उन नारियोंका महान् आर्तनाद सम्पूर्ण लोकोंको व्यथित करता हुआ प्रकट होने लगा ॥ १८ ॥

युगान्तकाले सम्प्राप्ते भूतानां दह्यतामिव ।
अभावः स्यादयं प्राप्त इति भूतानि मेनिरे ॥ १९ ॥

प्रलयकाल आनेपर दग्ध होते हुए प्राणियोंके चीखने-चिल्लानेके समान उन स्त्रियोंके रोनेका वह महान् शब्द गूँज रहा था । सब प्राणी ऐसा समझने लगे कि यह संहारकाल आ पहुँचा है ॥ १९ ॥

भृशमुद्विग्नमनसस्ते पौराः कुरुसंक्षये ।
प्राक्रोशन्त महाराज स्वनुरक्तास्तदा भृशम् ॥ २० ॥

महाराज ! कुरुकुलका संहार हो जानेसे अत्यन्त उद्विग्न-चित्त हुए पुरवासी जो राजवंशके साथ पूर्ण अनुराग रखते थे, जोर-जोरसे रोने लगे ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रनिर्गमने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रका नगरसे निकलनाविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

राजा धृतराष्ट्रसे कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्माकी भेंट और कृपाचार्यका कौरव-पाण्डवोंकी सेनाके विनाशकी सूचना देना

वैशम्पायन उवाच

क्रोशमात्रं ततो गत्वा ददृशुस्तान् महारथान् ।
शारद्वतं कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव च ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! वे सब लोग हस्तिनापुरसे एक ही कोसकी दूरीपर पहुँचे होंगे कि उन्हें शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य, द्रोणकुमार अश्वत्थामा और कृतवर्मा—ये तीनों महारथी दिखायी दिये ॥ १ ॥

ते तु दृष्ट्वैव राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
अश्रुकण्ठा विनिःश्वस्य रुदन्तमिदमब्रुवन् ॥ २ ॥

रोते हुए ऐश्वर्यशाली प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रको देखते ही आँसुओंसे उनका गला भर आया और वे इस प्रकार बोले—॥

पुत्रस्तव महाराज कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
गतः सानुचरो राजञ्शक्रलोकं महीपते ॥ ३ ॥

'पृथ्वीनाथ महाराज ! आपका पुत्र अत्यन्त दुष्कर कर्म करके अपने सेवकोंसहित इन्द्रलोकमें जा पहुँचा है ॥ ३ ॥

दुर्योधनबलान्मुक्ता वयमेव त्रयो रथाः ।
सर्वमन्यत् परिक्षीणं सैन्यं ते भरतर्षभ ॥ ४ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! दुर्योधनकी सेनासे केवल हम तीन रथी ही जीवित बचे हैं । आपकी अन्य सारी सेना नष्ट हो गयी' ॥४॥

इत्येवमुक्त्वा राजानं कृपः शारद्वतस्ततः ।
गान्धारीं पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

राजा धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य पुत्रशोकसे पीड़ित हुई गान्धारीसे इस प्रकार बोले—॥ ५ ॥

अभीता युद्ध्यमानास्ते घ्नन्तः शत्रुगणान् बहून् ।
वीरकर्माणि कुर्वाणाः पुत्रास्ते निधनं गताः ॥ ६ ॥

'देवि ! आपके सभी पुत्र निर्भय होकर जूझते और बहुसंख्यक शत्रुओंका संहार करते हुए वीरोचित कर्म करके वीरगतिको प्राप्त हुए हैं ॥ ६ ॥

ध्रुवं सम्प्राप्य लोकांस्ते निर्मलाञ्शस्त्रनिर्जितान् ।
भास्वरं देहमास्थाय विहरन्त्यमरा इव ॥ ७ ॥

'निश्चय ही वे शस्त्रोंद्वारा जीते हुए निर्मल लोकोंमें पहुँचकर तेजस्वी शरीर धारण करके वहाँ देवताओंके समान विहार करते होंगे ॥ ७ ॥

न हि कश्चिद्धि शूराणां युद्ध्यमानः पराङ्मुखः ।
शस्त्रेण निधनं प्राप्तो न च कश्चित् कृताञ्जलिः॥ ८ ॥

'उन शूरवीरोंमेंसे कोई भी युद्ध करते समय पीठ नहीं दिखा सका है । किसीने भी शत्रुके सामने हाथ नहीं जोड़े हैं । सभी शस्त्रके द्वारा मारे गये हैं ॥ ८ ॥

एवं तां क्षत्रियस्याहुः पुराणाः परमां गतिम् ।
शस्त्रेण निधनं संख्ये तन्न शोचितुमर्हसि ॥ ९ ॥

'इस प्रकार युद्धमें जो शस्त्रद्वारा मृत्यु होती है, उसे प्राचीन महर्षि क्षत्रियके लिये उत्तम गति बताते हैं; अतः उनके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥

न चापि शत्रवस्तेषामृद्ध्यन्ते राज्ञि पाण्डवाः ।
शृणु यत् कृतमस्माभिरश्वत्थामपुरोगमैः ॥ १० ॥

'महारानी ! उनके शत्रु पाण्डव भी विशेष लाभमें नहीं हैं । अश्वत्थामाको आगे करके हमने जो कुछ किया है, उसे सुनिये ॥ १० ॥

अधर्मेण हतं श्रुत्वा भीमसेनेन ते सुतम् ।
सुप्तं शिबिरमासाद्य पाण्डूनां कदनं कृतम् ॥ ११ ॥

'भीमसेनने आपके पुत्रको अधर्मसे मारा है, यह सुनकर हमलोग भी पाण्डवोंके सोते हुए शिविरमें जा पहुँचे और पाण्डववीरोंका संहार कर डाला ॥ ११ ॥

पञ्चाला निहताः सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
द्रुपदस्यात्मजाश्चैव द्रौपदेयाश्च पातिताः ॥ १२ ॥

'द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न आदि सारे पाञ्चाल मार डाले गये और द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको भी हमने मार गिराया ॥ १२ ॥

तथा विशसनं कृत्वा पुत्रशत्रुगणस्य ते ।
प्राद्रवाम रणे स्थातुं न हि शक्यामहे त्रयः ॥ १३ ॥

'इस प्रकार आपके पुत्रके शत्रुओंका रणभूमिमें संहार करके हम तीनों भागे जा रहे हैं । अब यहाँ ठहर नहीं सकते ॥

ते हि शूरा महेष्वासाः क्षिप्रमेष्यन्ति पाण्डवाः ।
अमर्षवशमापन्ना वैरं प्रतिजिहीर्षवः ॥ १४ ॥

'क्योंकि अमर्षमें भरे हुए वे महाधनुर्धर वीर पाण्डव वैरका बदला लेनेकी इच्छासे शीघ्र यहाँ आयेंगे ॥ १४ ॥

ते हतानात्मजाञ्श्रुत्वाप्रमत्ताः पुरुषर्षभाः ।
निरीक्षन्तः पदं शूराः क्षिप्रमेव यशस्विनि ॥ १५ ॥

'यशस्विनि ! अपने पुत्रोंके मारे जानेका समाचार सुनकर सदा सावधान रहनेवाले पुरुषप्रवर पाण्डव हमारा चरणचिह्न देखते हुए शीघ्र ही हमलोगोंका पीछा करेंगे ॥ १५ ॥

तेषां तु कदनं कृत्वा संस्थातुं नोत्सहामहे ।
अनुजानीहि नो राज्ञि मा च शोके मनः कृथाः ॥ १६ ॥

'रानीजी ! उनके पुत्रों और सम्बन्धियोंका विनाश करके हम यहाँ ठहर नहीं सकते; अतः हमें जानेकी आज्ञा दीजिये और आप भी अपने मनसे शोकको निकाल दीजिये ॥ १६ ॥

राजंस्त्वमनुजानीहि धैर्यमातिष्ठ चोत्तमम् ।
दिष्टान्तं पश्य चापि त्वं क्षात्रं धर्मं च केवलम् ॥ १७ ॥

(फिर वे धृतराष्ट्रसे बोले—) 'राजन् ! आप भी हमें जानेकी आज्ञा प्रदान करें और महान् धैर्यका आश्रय लें, केवल क्षात्रधर्मपर दृष्टि रखकर इतना ही देखें कि उनकी मृत्यु कैसे हुई है ?' ॥ १७ ॥

इत्येवमुक्त्वा राजानं कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रोणपुत्रश्च भारत ॥ १८ ॥
अवेक्षमाणा राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।

गङ्गामनु महाराज तूर्णमश्वानचोदयन् ॥ १९ ॥

भारत ! राजासे ऐसा कहकर उनकी प्रदक्षिणा करके कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामाने मनीषी राजा धृतराष्ट्रकी ओर देखते हुए तुरंत ही गङ्गातटकी ओर अपने घोड़े हाँक दिये ॥ १८-१९ ॥

अपक्रम्य तु ते राजन् सर्व एव महारथाः ।
आमन्त्र्यान्योन्यमुद्विग्नास्त्रिधा ते प्रययुस्तदा ॥ २० ॥

राजन् ! वहाँसे हटकर वे सभी महारथी उद्विग्न हो एक दूसरेसे विदा ले तीन मार्गोंपर चल दिये ॥ २० ॥

जगाम हास्तिनपुरं कृपः शारद्वतस्तदा ।
स्वमेव राष्ट्रं हार्दिक्यो द्रौणिर्व्यासाश्रमं ययौ ॥ २१ ॥

शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य तो हस्तिनापुर चले गये, कृतवर्मा अपने ही देशकी ओर चल दिया और द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने व्यास-आश्रमकी राह ली ॥ २१ ॥

एवं ते प्रययुर्वीरा वीक्षमाणाः परस्परम् ।
भयार्ताः पाण्डुपुत्राणामागस्कृत्वा महात्मनाम् ॥ २२ ॥

महात्मा पाण्डवोंका अपराध करके भयसे पीडित हुए वे तीनों वीर इस प्रकार एक दूसरेकी ओर देखते हुए वहाँसे खिसक गये ॥ २२ ॥

समेत्य वीरा राजानं तदा त्वनुदिते रवौ ।
विप्रजग्मुर्महात्मानो यथेच्छकमरिंदमाः ॥ २३ ॥

राजा धृतराष्ट्रसे मिलकर शत्रुओंका दमन करनेवाले वे तीनों महामनस्वी वीर सूर्योदयसे पहले ही अपने अभीष्ट स्थानोंकी ओर चल पड़े ॥ २३ ॥

समासाद्याथ वै द्रौणिं पाण्डुपुत्रा महारथाः ।
व्यजयंस्ते रणे राजन् विक्रम्य तदनन्तरम् ॥ २४ ॥

राजन् ! तदनन्तर महारथी पाण्डवोंने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके पास पहुँचकर उसे बलपूर्वक युद्धमें पराजित किया ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि कृपद्रौणिभोजदर्शने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्माका दर्शनविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

पाण्डवोंका धृतराष्ट्रसे मिलना, धृतराष्ट्रके द्वारा भीमकी लोहमयी प्रतिमाका भङ्ग होना और शोक करनेपर श्रीकृष्णका उन्हें समझाना

वैशम्पायन उवाच

हतेषु सर्वसैन्येषु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
शुश्रुवे पितरं वृद्धं निर्यान्तं गजसाह्वयात् ॥ १ ॥
सोऽभ्ययात् पुत्रशोकार्तः पुत्रशोकपरिप्लुतम् ।
शोचमानं महाराज भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय ! समस्त सेनाओंका संहार हो जानेपर धर्मराज युधिष्ठिरने जब सुना कि हमारे बूढ़े ताऊ संग्राममें मरे हुए वीरोंका अन्त्येष्टिकर्म करानेके लिये हस्तिनापुरसे चल दिये हैं, तब वे स्वयं पुत्रशोकसे आतुर हो पुत्रोंके ही शोकमें डूबकर चिन्तामग्न हुए राजा धृतराष्ट्रके पास अपने सब भाइयोंके साथ गये ॥ १-२ ॥

अन्वीयमानो वीरेण दाशार्हेण महात्मना ।
युयुधानेन च तथा तथैव च युयुत्सुना ॥ ३ ॥

उस समय दशार्हकुलनन्दन वीर महात्मा श्रीकृष्ण, सात्यकि और युयुत्सु भी उनके पीछे-पीछे गये ॥ ३ ॥

तमन्वगात् सुदुःखार्ता द्रौपदी शोककर्शिता ।
सह पाञ्चालयोषिद्भिर्यास्तत्रासन् समागताः ॥ ४ ॥

अत्यन्त दुःखसे आतुर और शोकसे दुबली हुई द्रौपदीने भी वहाँ आयी हुई पाञ्चाल-महिलाओंके साथ उनका अनुसरण किया ॥ ४ ॥

स गङ्गामनु वृन्दानि स्त्रीणां भरतसत्तम ।
कुररीणामिवार्तानां क्रोशन्तीनां ददर्श ह ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! गङ्गातटपर पहुँचकर युधिष्ठिरने कुररीकी तरह आर्तस्वरसे विलाप करती हुई स्त्रियोंके कई दल देखे ॥ ५ ॥

ताभिः परिवृतो राजा क्रोशन्तीभिः सहस्रशः ।
ऊर्ध्वबाहुभिरार्ताभी रुदतीभिः प्रियाप्रियैः ॥ ६ ॥

वहाँ पाण्डवोंके प्रिय और अप्रिय जनोंके लिये हाथ उठाकर आर्तस्वरसे रोती और करुण क्रन्दन करती हुई सहस्रों महिलाओंने राजा युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६ ॥

क्व नु धर्मज्ञता राज्ञः क्व नु साद्यानृशंसता ।
यच्चावधीत् पितॄन् भ्रातॄन् गुरुपुत्रान् सखीनपि ॥ ७ ॥

वे बोलीं—'अहो ! राजाकी वह धर्मज्ञता और दयालुता कहाँ चली गयी कि इन्होंने ताऊ, चाचा, भाई, गुरुपुत्रों और मित्रोंका भी वध कर डाला ॥ ७ ॥

घातयित्वा कथं द्रोणं भीष्मं चापि पितामहम् ।
मनस्तेऽभून्महाबाहो हत्वा चापि जयद्रथम् ॥ ८ ॥

'महाबाहो ! द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म और जयद्रथका भी वध करके आपके मनकी कैसी अवस्था हुई ? ॥ ८ ॥

किं नु राज्येन ते कार्यं पितॄन् भ्रातॄनपश्यतः ।
अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रौपदेयांश्च भारत ॥ ९ ॥

'भरतवंशी नरेश ! अपने ताऊ, चाचा और भाइयोंको, दुर्जय वीर अभिमन्युको तथा द्रौपदीके सभी पुत्रोंको न देखनेपर इस राज्यसे आपका क्या प्रयोजन है ?' ॥ ९ ॥

अतीत्य ता महाबाहुः क्रोशन्तीः कुररीरिव ।
ववन्दे पितरं ज्येष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १० ॥

धर्मराज महाबाहु युधिष्ठिरने कुररीकी भाँति क्रन्दन करती हुई उन स्त्रियोंके घेरेको लाँघकर अपने ताऊ धृतराष्ट्रको प्रणाम किया ॥ १० ॥

ततोऽभिवाद्य पितरं धर्मेणामित्रकर्षणाः ।
न्यवेदयन्त नामानि पाण्डवास्तेऽपि सर्वशः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् सभी शत्रुसूदन पाण्डवोंने धर्मानुसार ताऊको प्रणाम करके अपने नाम बताये ॥ ११ ॥

तमात्मजान्तकरणं पिता पुत्रवधार्दितः ।
अप्रीयमाणः शोकार्तः पाण्डवं परिषस्वजे ॥ १२ ॥

पुत्रवधसे पीड़ित हुए पिताने शोकसे व्याकुल हो अपने पुत्रोंका अन्त करनेवाले पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको हृदयसे लगाया; परंतु उस समय उनका मन प्रसन्न नहीं था ॥ १२ ॥

धर्मराजं परिष्वज्य सान्त्वयित्वा च भारत ।
दुष्टात्मा भीममन्वैच्छद् दिधक्षुरिव पावकः ॥ १३ ॥

भरतनन्दन ! धर्मराजको हृदयसे लगाकर उन्हें सान्त्वना दे धृतराष्ट्र भीमको इस प्रकार खोजने लगे, मानो आग बनकर उन्हें जला डालना चाहते हों । उस समय उनके मनमें दुर्भावना जाग उठी थी ॥ १३ ॥

स कोपपावकस्तस्य शोकवायुसमीरितः ।
भीमसेनमयं दावं दिधक्षुरिव दृश्यते ॥ १४ ॥

शोकरूपी वायुसे बढ़ी हुई उनकी क्रोधमयी अग्नि ऐसी दिखायी दे रही थी, मानो वह भीमसेनरूपी वनको जलाकर भस्म कर देना चाहती हो ॥ १४ ॥

तस्य संकल्पमाज्ञाय भीमं प्रत्यशुभं हरिः ।
भीममाक्षिप्य पाणिभ्यां प्रददौ भीममायसम् ॥ १५ ॥

भीमसेनके प्रति उनके अशुभ संकल्पको जानकर श्रीकृष्णने भीमसेनको झटका देकर हटा दिया और दोनों हाथोंसे उनकी लोहमयी मूर्ति धृतराष्ट्रके सामने कर दी ॥ १५ ॥

प्रागेव तु महाबुद्धिर्बुद्ध्वा तस्येङ्गितं हरिः ।
संविधानं महाप्राज्ञस्तत्र चक्रे जनार्दनः ॥ १६ ॥

महाज्ञानी और परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णको पहलेसे ही उनका अभिप्राय ज्ञात हो गया था, इसलिये उन्होंने वहाँ यह व्यवस्था कर ली थी ॥ १६ ॥

तं गृहीत्वैव पाणिभ्यां भीमसेनमयस्मयम् ।
बभञ्ज बलवान् राजा मन्यमानो वृकोदरम् ॥ १७ ॥

बलवान् राजा धृतराष्ट्रने उस लोहमय भीमसेनको ही असली भीम समझा और उसे दोनों बाँहोंसे दबाकर तोड़ डाला ॥ १७ ॥

नागायुतबलप्राणः स राजा भीममायसम् ।
भङ्क्त्वा विमथितोरस्कः सुस्राव रुधिरं मुखात् ॥ १८ ॥

राजा धृतराष्ट्रमें दस हजार हाथियोंका बल था तो भी भीमकी लोहमयी प्रतिमाको तोड़कर उनकी छाती व्यथित हो गयी और मुँहसे खून निकलने लगा ॥ १८ ॥

ततः पपात मेदिन्यां तथैव रुधिरोक्षितः ।
प्रपुष्पिताग्रशिखरः पारिजात इव द्रुमः ॥ १९ ॥

वे उसी अवस्थामें खूनसे भीगकर पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो ऊपरकी डालीपर खिले हुए लाल फूलोंसे सुशोभित पारिजातका वृक्ष धराशायी हो गया हो ॥ १९ ॥

प्रत्यगृह्णाच्च तं विद्वान् सूतो गावल्गणिस्तदा ।
मैवमित्यब्रवीच्चैनं शमयन् सान्त्वयन्निव ॥ २० ॥

उस समय उनके विद्वान् सारथि गवल्गणपुत्र संजयने उन्हें पकड़कर उठाया और समझा-बुझाकर शान्त करते हुए कहा—'आपको ऐसा नहीं करना चाहिये' ॥ २० ॥

स तु कोपं समुत्सृज्य गतमन्युर्महामनाः ।
हा हा भीमेति चुक्रोश नृपः शोकसमन्वितः ॥ २१ ॥

जब रोषका आवेश दूर हो गया, तब वे महामना नरेश क्रोध छोड़कर शोकमें डूब गये और 'हा भीम ! हा भीम !' कहते हुए विलाप करने लगे ॥ २१ ॥

तं विदित्वा गतक्रोधं भीमसेनवधार्दितम् ।
वासुदेवो वरः पुंसामिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥

उन्हें भीमसेनके वधकी आशङ्कासे पीड़ित और क्रोधशून्य हुआ जान पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा— ॥

मा शुचो धृतराष्ट्र त्वं नैष भीमस्त्वया हतः ।
आयसी प्रतिमा ह्येषा त्वया निष्पातिता विभो ॥ २३ ॥

'महाराज धृतराष्ट्र ! आप शोक न करें । ये भीम आपके हाथसे नहीं मारे गये हैं । प्रभो ! यह तो लोहेकी एक प्रतिमा थी, जिसे आपने चूर-चूर कर डाला ॥ २३ ॥

त्वां क्रोधवशमापन्नं विदित्वा भरतर्षभ ।
मयापकृष्टः कौन्तेयो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतः ॥ २४ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! आपको क्रोधके वशीभूत हुआ जान मैंने मृत्युकी दाढ़ोंमें फँसे हुए कुन्तीकुमार भीमसेनको पीछे खींच लिया था ॥ २४ ॥

न हि ते राजशार्दूल बले तुल्योऽस्ति कश्चन ।
कः सहेत महाबाहो बाह्वोर्विग्रहणं नरः ॥ २५ ॥

'राजसिंह ! बलमें आपकी समानता करनेवाला कोई नहीं है । महाबाहो ! आपकी दोनों भुजाओंकी पकड़ कौन मनुष्य सह सकता है ? ॥ २५ ॥

यथान्तकमनुप्राप्य जीवन् कश्चिन्न मुच्यते ।
एवं बाह्वन्तरं प्राप्य तव जीवेन्न कश्चन ॥ २६ ॥

'जैसे यमराजके पास पहुँचकर कोई भी जीवित नहीं छूट सकता, उसी प्रकार आपकी भुजाओंके बीचमें पड़ जानेपर किसीके प्राण नहीं बच सकते ॥ २६ ॥

तस्मात् पुत्रेण या तेऽसौ प्रतिमा कारिताऽऽयसी ।
भीमस्य सेयं कौरव्य तवैवोपहृता मया ॥ २७ ॥

'कुरुनन्दन ! इसलिये आपके पुत्रने जो भीमसेनकी लोहमयी प्रतिमा बनवा रक्खी थी, वही मैंने आपको भेंट कर दी ॥ २७ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं धर्मादपकृतं मनः ।
तव राजेन्द्र तेन त्वं भीमसेनं जिघांससि ॥ २८ ॥

'राजेन्द्र ! आपका मन पुत्रशोकसे संतप्त हो धर्मसे विचलित हो गया है; इसीलिये आप भीमसेनको मार डालना चाहते हैं ॥ २८ ॥

न त्वेतत् ते क्षमं राजन् हन्यास्त्वं यद् वृकोदरम् ।

न हि पुत्रा महाराज जीवेयुस्ते कथंचन ॥ २९ ॥

'राजन् ! आपके लिये यह कदापि उचित न होगा कि आप भीमका वध करें । महाराज ! (भीमसेन न मारते तो भी) आपके पुत्र किसी तरह जीवित नहीं रह सकते थे (क्योंकि उनकी आयु पूरी हो चुकी थी) ॥ २९ ॥

तस्माद् यत् कृतमस्माभिर्मन्यमानैः शमं प्रति ।
अनुमन्यस्व तत् सर्वं मा च शोके मनः कृथाः ॥ ३० ॥

'अतः हमलोगोंने सर्वत्र शान्ति स्थापित करनेके उद्देश्यसे जो कुछ किया है, उन सब बातोंका आप भी अनुमोदन करें । मनको व्यर्थ शोकमें न डालें' ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि आयसभीमभङ्गे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें भीमसेनकी लोहमयी प्रतिमाका भंग होनाविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका धृतराष्ट्रको फटकारकर उनका क्रोध शान्त करना और धृतराष्ट्रका पाण्डवोंको हृदयसे लगाना

वैशम्पायन उवाच

तत एनमुपातिष्ठञ्शौचार्थं परिचारकाः ।
कृतशौचं पुनश्चैनं प्रोवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर सेवकगण शौच-सम्बन्धी कार्य सम्पन्न करानेके लिये राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित हुए । जब वे शौचकृत्य पूर्ण कर चुके, तब भगवान् मधुसूदनने फिर उनसे कहा— ॥ १ ॥

राजन्नधीता वेदास्ते शास्त्राणि विविधानि च ।
श्रुतानि च पुराणानि राजधर्माश्च केवलाः ॥ २ ॥

'राजन् ! आपने वेदों और नाना प्रकारके शास्त्रोंका अध्ययन किया है । सभी पुराणों और केवल राजधर्मोंका भी श्रवण किया है ॥ २ ॥

एवं विद्वान् महाप्राज्ञः समर्थः सन् बलाबले ।
आत्मापराधात् कस्मात् त्वं कुरुषे कोपमीदृशम् ॥ ३ ॥

'ऐसे विद्वान्, परम बुद्धिमान् और बलाबलका निर्णय करनेमें समर्थ होकर भी अपने ही अपराधसे होनेवाले इस विनाशको देखकर आप ऐसा क्रोध क्यों कर रहे हैं ? ॥ ३ ॥

उक्तवांस्त्वां तदैवाहं भीष्मद्रोणौ च भारत ।
विदुरः संजयश्चैव वाक्यं राजन् न तत् कृथाः ॥ ४ ॥

'भरतनन्दन ! मैंने तो उसी समय आपसे यह बात कह दी थी, भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर और संजयने भी आपको समझाया था । राजन् ! परंतु आपने किसीकी बात नहीं मानी ॥

स वार्यमाणो नास्माकमकार्षीर्वचनं तदा ।
पाण्डवानधिकाञ्जानन् बले शौर्ये च कौरव ॥ ५ ॥

'कुरुनन्दन ! हमलोगोंने आपको बहुत रोका; परंतु आपने बल और शौर्यमें पाण्डवोंको बढ़ा-चढ़ा जानकर भी हमारा कहना नहीं माना ॥ ५ ॥

राजा हि यः स्थिरप्रज्ञः स्वयं दोषानवेक्षते ।
देशकालविभागं च परं श्रेयः स विन्दति ॥ ६ ॥

'जिसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा जो राजा स्वयं दोषोंको देखता और देश-कालके विभागको समझता है, वह परम कल्याणका भागी होता है ॥ ६ ॥

उच्यमानस्तु यः श्रेयो गृह्णीते नो हिताहिते ।
आपदः समनुप्राप्य स शोचत्यनये स्थितः ॥ ७ ॥

'जो हितकी बात बतानेपर भी हिताहितकी बातको नहीं समझ पाता, वह अन्यायका आश्रय ले बड़ी भारी विपत्तिमें पड़कर शोक करता है ॥ ७ ॥

ततोऽन्यवृत्तमात्मानं समवेक्षस्व भारत ।
राजंस्त्वं ह्यविधेयात्मा दुर्योधनवशे स्थितः ॥ ८ ॥

'भरतनन्दन ! आप अपनी ओर तो देखिये । आपका बर्ताव सदा ही न्यायके विपरीत रहा है । राजन् ! आप अपने मनको वशमें न करके सदा दुर्योधनके अधीन रहे हैं ॥

आत्मापराधादापन्नस्तत् किं भीमं जिघांससि ।
तस्मात् संयच्छ कोपं त्वं स्वमनुस्मर दुष्कृतम् ॥ ९ ॥

'अपने ही अपराधसे विपत्तिमें पड़कर आप भीमसेनको क्यों मार डालना चाहते हैं ? इसलिये क्रोधको रोकिये और अपने दुष्कर्मोंको याद कीजिये ॥ ९ ॥

यस्तु तां स्पर्धया क्षुद्रः पाञ्चालीमानयत् सभाम् ।
स हतो भीमसेनेन वैरं प्रतिजिहीर्षता ॥ १० ॥

'जिस नीच दुर्योधनने मनमें जलन रखनेके कारण पाञ्चालराजकुमारी कृष्णाको भरी सभामें बुलाकर अपमानित किया, उसे वैरका बदला लेनेकी इच्छासे भीमसेनने मार डाला ॥१०॥

आत्मनोऽतिक्रमं पश्य पुत्रस्य च दुरात्मनः ।
यदनागसि पाण्डूनां परित्यागस्त्वया कृतः ॥ ११ ॥

'आप अपने और दुरात्मा पुत्र दुर्योधनके उस अत्याचारपर तो दृष्टि डालिये, जब कि बिना किसी अपराधके ही आपने पाण्डवोंका परित्याग कर दिया था' ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच

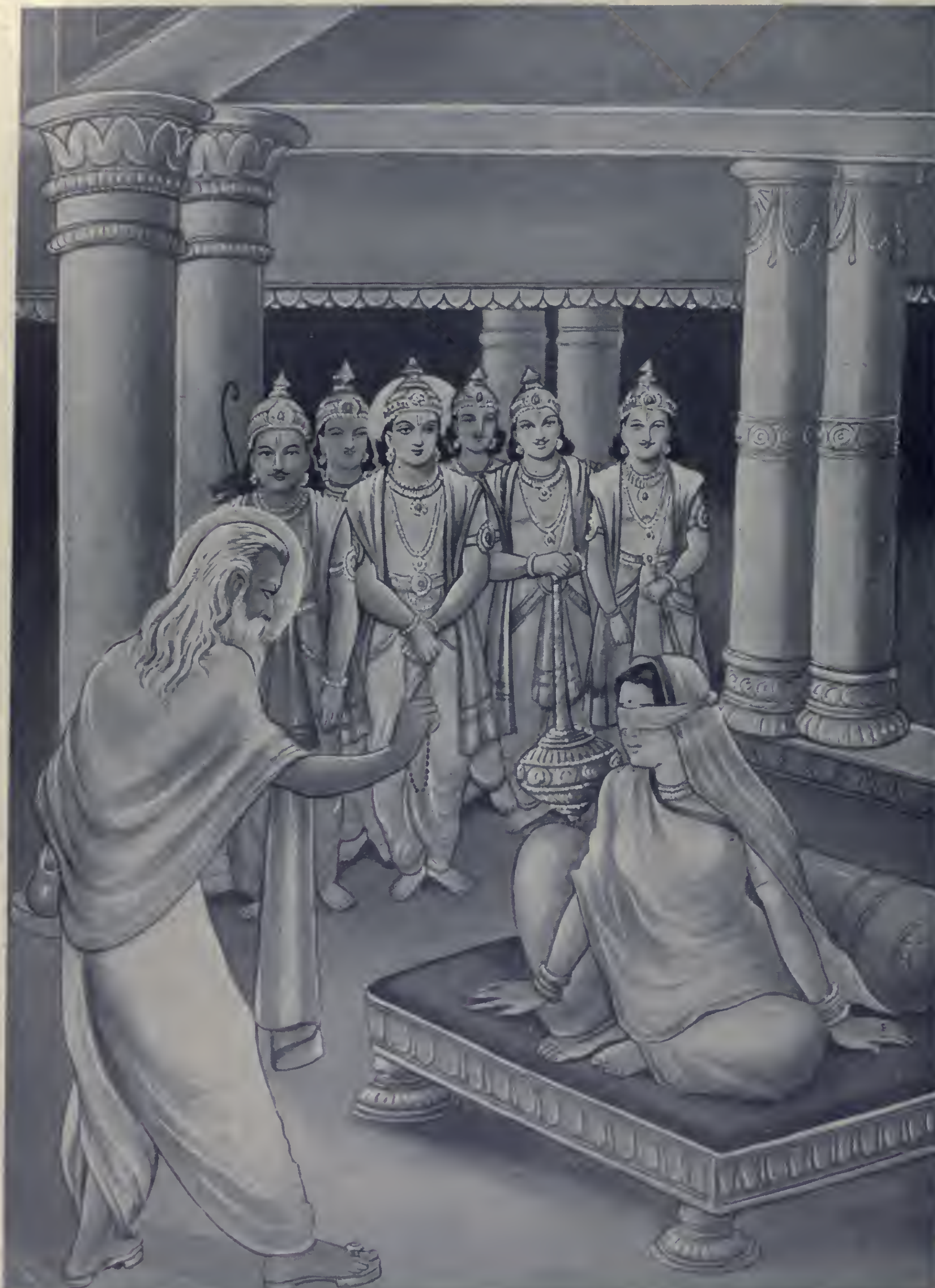
एवमुक्तः स कृष्णेन सर्वं सत्यं जनाधिप ।
उवाच देवकीपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ १२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं— नरेश्वर ! जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने सब सच्ची-सच्ची बातें कह डालीं, तब पृथ्वीपति धृतराष्ट्रने देवकीनन्दन श्रीकृष्णसे कहा—॥ १२ ॥

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
पुत्रस्नेहस्तु बलवान् धैर्यान्मां समचालयत् ॥ १३ ॥

'महाबाहु ! माधव ! आप जैसा कह रहे हैं, ठीक ऐसी ही बात है; परतु पुत्रका स्नेह प्रबल होता है, जिसने मुझे धैर्यसे विचलित कर दिया था ॥ १३ ॥

दिष्ट्या तु पुरुषव्याघ्रो बलवान् सत्यविक्रमः ।
त्वद्गुप्तो नागमत् कृष्ण भीमो बाह्वन्तरं मम ॥ १४ ॥



व्यासजी गान्धारीको समझा रहे हैं

'श्रीकृष्ण ! सौभाग्यकी बात है कि आपसे सुरक्षित होकर बलवान् सत्यपराक्रमी पुरुषसिंह भीमसेन मेरी दोनों भुजाओंके बीचमें नहीं आये॥ १४ ॥

इदानीं त्वहमव्यग्रो गतमन्युर्गतज्वरः ।
मध्यमं पाण्डवं वीरं द्रष्टुमिच्छामि माधव ॥ १५ ॥

'माधव ! अब इस समय मैं शान्त हूँ । मेरा क्रोध उतर गया है और चिन्ता भी दूर हो गयी है; अतः मैं मध्यम पाण्डव वीर अर्जुनको देखना चाहता हूँ ॥ १५ ॥

हतेषु पार्थिवेन्द्रेषु पुत्रेषु निहतेषु च ।
पाण्डुपुत्रेषु वै शर्म प्रीतिश्चाप्यवतिष्ठते ॥ १६ ॥

'समस्त राजाओं तथा अपने पुत्रोंके मारे जानेपर अब मेरा प्रेम और हितचिन्तन पाण्डुके इन पुत्रोंपर ही आश्रित है'॥

ततः स भीमं च धनंजयं च
माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।
पस्पर्श गात्रैः प्ररुदन् सुगात्रा-
नाश्वास्य कल्याणमुवाच चैतान्॥ १७ ॥

तदनन्तर रोते हुए धृतराष्ट्रने सुन्दर शरीरवाले भीमसेन, अर्जुन तथा माद्रीके दोनों पुत्र नरवीर नकुल-सहदेवको अपने अङ्गोंसे लगाया और उन्हें सान्त्वना देकर कहा—'तुम्हारा कल्याण हो' ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रकोपविमोचने पाण्डवपरिष्वङ्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें 'धृतराष्ट्रका क्रोध छोड़कर पाण्डवोंको हृदयसे लगाना' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

पाण्डवोंको शाप देनेके लिये उद्यत हुई गान्धारीको व्यासजीका समझाना

वैशम्पायन उवाच

धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातास्ततस्ते कुरुपाण्डवाः ।
अभ्ययुर्भ्रातरः सर्वे गान्धारीं सह केशवाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर वे कुरुवंशी पाण्डव सभी भाई भगवान् श्रीकृष्णके साथ गान्धारीके पास गये ॥ १ ॥

ततो ज्ञात्वा हतामित्रं युधिष्ठिरमुपागतम् ।
गान्धारी पुत्रशोकार्ता शप्तुमैच्छदनिन्दिता ॥ २ ॥

पुत्रशोकसे पीड़ित हुई गान्धारीको जब यह मालूम हुआ कि युधिष्ठिर अपने शत्रुओंका संहार करके मेरे पास आये हैं, तब उन सती-साध्वी देवीने उन्हें शाप देनेकी इच्छा की ॥२॥

तस्याः पापमभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान् प्रति ।
ऋषिः सत्यवतीपुत्रः प्रागेव समबुध्यत ॥ ३ ॥
स गङ्गायामुपस्पृश्य पुण्यगन्धि पयः शुचि ।
तं देशमुपसम्पेदे परमर्षिर्मनोजवः ॥ ४ ॥

पाण्डवोंके प्रति गान्धारीके मनमें पापपूर्ण संकल्प है, इस बातको सत्यवतीनन्दन महर्षि व्यास पहले ही जान गये थे । उनके उस अभिप्रायको जानकर वे मनके समान वेगशाली महर्षि गङ्गाजीके पवित्र एवं सुगन्धित जलसे आचमन करके शीघ्र ही उस स्थानपर आ पहुँचे ॥ ३-४ ॥

दिव्येन चक्षुषा पश्यन् मनसा तद्गतेन च ।
सर्वप्राणभृतां भावं स तत्र समबुध्यत ॥ ५ ॥

वे दिव्य दृष्टिसे तथा अपने मनको समस्त प्राणियोंके साथ एकाग्र करके उनके आन्तरिक भावको समझ लेते थे ॥ ५ ॥

स स्नुषामब्रवीत् काले कल्यवादी महातपाः ।
शापकालमवाक्षिप्य शमकालमुदीरयन् ॥ ६ ॥

अतः हितकी बात बतानेवाले वे महातपस्वी व्यास समयपर अपनी पुत्रवधूके पास जा पहुँचे और शापका अवसर हटाकर शान्तिका अवसर उपस्थित करते हुए इस प्रकार बोले—॥ ६ ॥

न कोपः पाण्डवे कार्यो गान्धारि शममाप्नुहि ।
वचो निगृह्यतामेतच्छृणु चेदं वचो मम ॥ ७ ॥

'गान्धारराजकुमारी ! शान्त हो जाओ । तुम्हें पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर क्रोध नहीं करना चाहिये । अभी-अभी जो बात मुँहसे निकालना चाहती हो, उसे रोक लो और मेरी यह बात सुनो ॥ ७ ॥

उक्तास्यष्टादशाहानि पुत्रेण जयमिच्छता ।
शिवमाशास्व मे मातर्युध्यमानस्य शत्रुभिः ॥ ८ ॥

'गत अठारह दिनोंमें विजयकी अभिलाषा रखनेवाला तुम्हारा पुत्र प्रतिदिन तुमसे जाकर कहता था कि 'माँ ! मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करने जा रहा हूँ । तुम मेरे कल्याणके लिये आशीर्वाद दो' ॥ ८ ॥

सा तथा याच्यमाना त्वं काले काले जयैषिणा ।
उक्तवत्यसि गान्धारि यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ९ ॥

'इस प्रकार जब विजयाभिलाषी दुर्योधन समय-समयपर तुमसे प्रार्थना करता था, तब तुम सदा यही उत्तर देती थीं कि 'जहाँ धर्म है, वहीं विजय है' ॥ ९ ॥

न चाप्यतीतां गान्धारि वाचं ते वितथामहम् ।
स्मरामि भाषमाणायास्तथा प्रणिहिता ह्यसि ॥ १० ॥

'गान्धारी ! तुमने बातचीतके प्रसङ्गमें भी पहले कभी झूठ कहा हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं है तथा तुम सदा प्राणियोंके हितमें तत्पर रहती आयी हो ॥ १० ॥

विग्रहे तुमुले राज्ञां गत्वा पारमसंशयम् ।
जितं पाण्डुसुतैर्युद्धे नूनं धर्मस्ततोऽधिकः ॥ ११ ॥

'राजाओंके इस घोर संग्रामसे पार होकर पाण्डवोंने जो युद्धमें विजय पायी है, इससे निःसंदेह यह बात सिद्ध हो गयी कि 'धर्मका बल सबसे अधिक है' ॥ ११ ॥

क्षमाशीला पुरा भूत्वा साद्य न क्षमसे कथम्।
अधर्मं जहि धर्मज्ञे यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १२ ॥

'धर्मज्ञे ! तुम तो पहले बड़ी क्षमाशील थी। अब क्यों नहीं क्षमा करती हो ? अधर्म छोड़ो, क्योंकि जहाँ धर्म है, वहीं विजय है ॥ १२ ॥

स्वं च धर्मं परिस्मृत्य वाचं चोक्तां मनस्विनि ।
कोपं संयच्छ गान्धारि मैवं भूः सत्यवादिनि ॥ १३ ॥

'मनस्विनी गान्धारी ! अपने धर्म तथा कही हुई बातका स्मरण करके क्रोधको रोको। सत्यवादिनि ! अब फिर तुम्हारा ऐसा बर्ताव नहीं होना चाहिये' ॥ १३ ॥

गान्धार्युवाच

भगवन्नाभ्यसूयामि नैतानिच्छामि नश्यतः ।
पुत्रशोकेन तु बलान्मनो विह्वलतीव मे ॥ १४ ॥

गान्धारी बोली—भगवन् ! मैं पाण्डवोंके प्रति कोई दुर्भाव नहीं रखती और न इनका विनाश ही चाहती हूँ; परंतु क्या करूँ ? पुत्रोंके शोकसे मेरा मन हठात् व्याकुल-सा हो जाता है ॥ १४ ॥

यथैव कुन्त्या कौन्तेया रक्षितव्यास्तथा मया ।
तथैव धृतराष्ट्रेण रक्षितव्या यथा त्वया ॥ १५ ॥

कुन्तीके ये बेटे जिस प्रकार कुन्तीके द्वारा रक्षणीय हैं, उसी प्रकार मुझे भी इनकी रक्षा करनी चाहिये। जैसे आप इनकी रक्षा चाहते हैं, उसी प्रकार महाराज धृतराष्ट्रका भी कर्तव्य है कि इनकी रक्षा करें ॥ १५ ॥

दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च ।
कर्णदुःशासनाभ्यां च कृतोऽयं कुरुसंक्षयः ॥ १६ ॥

कुरुकुलका यह संहार तो दुर्योधन, मेरे भाई शकुनि, कर्ण तथा दुःशासनके अपराधसे ही हुआ है ॥ १६ ॥

नापराध्यति बीभत्सुर्न च पार्थो वृकोदरः ।
नकुलः सहदेवश्च नैव जातु युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥

इसमें न तो अर्जुनका अपराध है और न कुन्तीपुत्र भीमसेनका। नकुल-सहदेव और युधिष्ठिरको भी कभी इसके लिये दोष नहीं दिया जा सकता ॥ १७ ॥

युध्यमाना हि कौरव्याः कृन्तमानाः परस्परम् ।
निहताः सहिताश्चान्यैस्तत्र नास्त्यप्रियं मम ॥ १८ ॥

कौरव आपसमें ही जूझकर मारकाट मचाते हुए अपने दूसरे साथियोंके साथ मारे गये हैं; अतः इसमें मुझे अप्रिय लगनेवाली कोई बात नहीं है ॥ १८ ॥

किं तु कर्माकरोद् भीमो वासुदेवस्य पश्यतः ।
दुर्योधनं समाहूय गदायुद्धे महामनाः ॥ १९ ॥
शिक्षयाभ्यधिकं ज्ञात्वा चरन्तं बहुधा रणे ।
अधो नाभ्याः प्रहृतवांस्तन्मे कोपमवर्धयत् ॥ २० ॥

परंतु महामना भीमसेनने गदायुद्धके लिये दुर्योधनको बुलाकर श्रीकृष्णके देखते-देखते उसके प्रति जो बर्ताव किया है, वह मुझे अच्छा नहीं लगा। वह रणभूमिमें अनेक प्रकार-के पैंतरे दिखाता हुआ विचर रहा था; अतः शिक्षामें उसे अपनेसे अधिक जान भीमने जो उसकी नाभिसे नीचे प्रहार किया, इनके इसी बर्तावने मेरे क्रोधको बढ़ा दिया है १९-२०

कथं नु धर्मं धर्मज्ञैः समुद्दिष्टं महात्मभिः ।
त्यजेयुराहवे शूराः प्राणहेतोः कथंचन ॥ २१ ॥

धर्मज्ञ महात्माओंने गदायुद्धके लिये जिस धर्मका प्रति-पादन किया है, उसे शूरवीर योद्धा रणभूमिमें किसी तरह अपने प्राण बचानेके लिये कैसे त्याग सकते हैं ? ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि गान्धारीसान्त्वनायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें गान्धारीकी सान्त्वनाविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

भीमसेनका गान्धारीको अपनी सफाई देते हुए उनसे क्षमा माँगना, युधिष्ठिरका अपना अपराध स्वीकार करना, गान्धारीके दृष्टिपातसे युधिष्ठिरके पैरोंके नखोंका काला पड़ जाना, अर्जुनका भयभीत होकर श्रीकृष्णके पीछे छिप जाना, पाण्डवोंका अपनी मातासे मिलना, द्रौपदीका विलाप, कुन्तीका आश्वासन तथा गान्धारीका उन दोनोंको धीरज बँधाना

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या भीमसेनोऽथ भीतवत् ।
गान्धारीं प्रत्युवाचेदं वचः सानुनयं तदा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! गान्धारीकी यह बात सुनकर भीमसेनने डरे हुएकी भाँति विनयपूर्वक उनकी बातका उत्तर देते हुए कहा—॥ १ ॥

अधर्मो यदि वा धर्मस्त्रासात् तत्र मया कृतः ।
आत्मानं त्रातुकामेन तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ २ ॥

'माताजी ! यह अधर्म हो या धर्म; मैंने दुर्योधनसे डर-कर अपने प्राण बचानेके लिये ही वहाँ ऐसा किया था; अतः आप मेरे उस अपराधको क्षमा कर दें ॥ २ ॥

न हि युद्धेन पुत्रस्ते धर्म्येण स महाबलः ।
शक्यः केनचिदुद्यन्तुमतो विषममाचरम् ॥ ३ ॥

'आपके उस महाबली पुत्रको कोई भी धर्मानुकूल युद्ध करके मारनेका साहस नहीं कर सकता था; अतः मैंने विषमतापूर्ण बर्ताव किया ॥ ३ ॥

अधर्मेण जितः पूर्वं तेन चापि युधिष्ठिरः ।
निकृताश्च सदैव स्म ततो विषममाचरम् ॥ ४ ॥

'पहले उसने भी अधर्मसे ही राजा युधिष्ठिरको जीता था और हमलोगोंके साथ सदा ही धोखा किया था, इसलिये मैंने भी उसके साथ विषम बर्ताव किया ॥ ४ ॥

सैन्यस्यैकोऽवशिष्टोऽयं गदायुद्धेन वीर्यवान्।
मां हत्वा न हरेद् राज्यमिति वै तत् कृतं मया॥ ५ ॥

'कौरवसेनाका एकमात्र बचा हुआ यह पराक्रमी वीर गदायुद्धके द्वारा मुझे मारकर पुनः सारा राज्य हर न ले, इसी आशङ्कासे मैंने वह अयोग्य बर्ताव किया था ॥ ५ ॥

राजपुत्रीं च पाञ्चालीमेकवस्त्रां रजस्वलाम्।
भवत्या विदितं सर्वमुक्तवान् यत् सुतस्तव ॥ ६ ॥

'राजकुमारी द्रौपदीसे, जो एक वस्त्र धारण किये रजस्वला-अवस्थामें थी, आपके पुत्रने जो कुछ कहा था, वह सब आप जानती हैं ॥ ६ ॥

सुयोधनमसंगृह्य न शक्या भूः ससागरा।
केवला भोक्तुमस्माभिरतश्चैतत् कृतं मया ॥ ७ ॥

'दुर्योधनका संहार किये बिना हमलोग निष्कण्टक पृथ्वीका राज्य नहीं भोग सकते थे, इसलिये मैंने यह अयोग्य कार्य किया ॥ ७ ॥

तथाप्यप्रियमस्माकं पुत्रस्ते समुपाचरत्।
द्रौपद्या यत् सभामध्ये सव्यमूरुमदर्शयत् ॥ ८ ॥

'आपके पुत्रने तो हम सब लोगोंका इससे भी बढ़कर अप्रिय किया था कि उसने भरी सभामें द्रौपदीको अपनी बाँयीं जाँघ दिखायी ॥ ८ ॥

तदैव वध्यः सोऽस्माकं दुराचारश्च ते सुतः।
धर्मराजाज्ञया चैव स्थिताः स्म समये तदा ॥ ९ ॥

'आपके उस दुराचारी पुत्रको तो हमें उसी समय मार डालना चाहिये था; परंतु धर्मराजकी आज्ञासे हमलोग समयके बन्धनमें बँधकर चुप रह गये ॥ ९ ॥

वैरमुद्दीपितं राज्ञि पुत्रेण तव तन्महत्।
क्लेशिताश्च वने नित्यं तत एतत् कृतं मया ॥ १० ॥

'रानी ! आपके पुत्रने उस महान् वैरकी आगको और भी प्रज्वलित कर दिया और हमें वनमें भेजकर सदा क्लेश पहुँचाया; इसीलिये हमने उसके साथ ऐसा व्यवहार किया है॥

वैरस्यास्य गताः पारं हत्वा दुर्योधनं रणे।
राज्यं युधिष्ठिरः प्राप्तो वयं च गतमन्यवः ॥ ११ ॥

'रणभूमिमें दुर्योधनका वध करके हमलोग इस वैरसे पार हो गये। राजा युधिष्ठिरको राज्य मिल गया और हमलोगोंका क्रोध शान्त हो गया' ॥ ११ ॥

गान्धार्युवाच

न तस्यैष वधस्तात यत् प्रशंससि मे सुतम्।
कृतवांश्चापि तत् सर्वं यदिदं भाषसे मयि ॥ १२ ॥

गान्धारी बोलीं—तात ! तुम मेरे पुत्रकी इतनी प्रशंसा कर रहे हो;इसलिये यह उसका वध नहीं हुआ(वह अपने यशोमय शरीरसे अमर है) और मेरे सामने तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सारा अपराध दुर्योधनने अवश्य किया है ॥१२॥

हताश्वे नकुले यत्तु वृषसेनेन भारत।
अपिबः शोणितं संख्ये दुःशासनशरीरजम् ॥ १३ ॥
सद्भिर्विगर्हितं घोरमनार्यजनसेवितम्।
क्रूरं कर्माकृथास्तस्मात्तदयुक्तं वृकोदर ॥ १४ ॥

भारत ! परंतु वृषसेनने जब नकुलके घोड़ोंको मारकर उसे रथहीन कर दिया था, उस समय तुमने युद्धमें दुःशासनको मारकर जो उसका खून पी लिया, वह सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित और नीच पुरुषोंद्वारा सेवित घोर क्रूरतापूर्ण कर्म है। वृकोदर ! तुमने वही क्रूर कार्य किया है, इसलिये तुम्हारे द्वारा अत्यन्त अयोग्य कर्म बन गया है ॥ १३-१४ ॥

भीमसेन उवाच

अन्यस्यापि न पातव्यं रुधिरं किं पुनः स्वकम्।
यथैवात्मा तथा भ्राता विशेषो नास्ति कश्चन ॥ १५ ॥

भीमसेन बोले—माताजी ! दूसरेका भी खून नहीं पीना चाहिये; फिर अपना ही खून कोई कैसे पी सकता है ? जैसे अपना शरीर है, वैसे ही भाईका शरीर है। अपनेमें और भाईमें कोई अन्तर नहीं है ॥ १५ ॥

रुधिरं न व्यतिक्रामद् दन्तोष्ठं मेऽम्ब मा शुचः।
वैवस्वतस्तु तद् वेद हस्तौ मे रुधिरोक्षितौ ॥ १६ ॥

माँ ! आप शोक न करें। वह खून मेरे दाँतों और ओठोंको लाँघकर आगे नहीं जा सका था। इस बातको सूर्य-पुत्र यमराज जानते हैं कि केवल मेरे दोनों हाथ ही रक्तमें सने हुए थे ॥ १६ ॥

हताश्वं नकुलं दृष्ट्वा वृषसेनेन संयुगे।
भ्रातॄणां सम्प्रहृष्टानां त्रासः संजनितो मया ॥ १७ ॥

युद्धमें वृषसेनके द्वारा नकुलके घोड़ोंको मारा गया देख जो दुःशासनके सभी भाई हर्षसे उल्लसित हो उठे थे, उनके मनमें वैसा करके मैंने केवल त्रास उत्पन्न किया था ॥

केशपक्षपरामर्शे द्रौपद्या द्यूतकारिते।
क्रोधाद् यदब्रवं चाहं तच्च मे हृदि वर्तते ॥ १८ ॥

द्यूतक्रीडाके समय जब द्रौपदीका केश खींचा गया, उस समय क्रोधमें भरकर मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसकी याद हमारे हृदयमें बराबर बनी रहती थी ॥ १८ ॥

क्षत्रधर्माच्च्युतो राज्ञि भवेयं शाश्वतीः समाः।
प्रतिज्ञां तामनिस्तीर्य ततस्तत् कृतवानहम् ॥ १९ ॥

रानीजी ! यदि मैं उस प्रतिज्ञाको पूर्ण न करता तो सदाके लिये क्षत्रिय-धर्मसे गिर जाता, इसलिये मैंने यह काम किया था ॥ १९ ॥

न मामर्हसि गान्धारि दोषेण परिशङ्कितुम्।
अनिगृह्य पुरा पुत्रानस्मास्वनपकारिषु।
अधुना किं नु दोषेण परिशङ्कितुमर्हसि ॥ २० ॥

माता गान्धारी ! आपको मुझमें दोषकी आशङ्का नहीं करनी चाहिये। पहले जब हमलोगोंने कोई अपराध नहीं किया था, उस समय हमपर अत्याचार करनेवाले अपने पुत्रोंको तो आपने रोका नहीं; फिर इस समय आप क्यों मुझपर दोषारोपण करती हैं ? ॥ २० ॥

गान्धार्युवाच

वृद्धस्यास्य शतं पुत्रान् निघ्नंस्त्वमपराजितः।
कस्मान्नाशेषयः कंचिद् येनाल्पमपराधितम् ॥ २१ ॥

गान्धारी बोलीं—बेटा ! तुम अपराजित वीर हो। तुमने इन बूढ़े महाराजके सौ पुत्रोंको मारते समय किसी एकको भी, जिसने बहुत थोड़ा अपराध किया था, क्यों नहीं जीवित छोड़ दिया ? ॥ २१ ॥

संतानमावयोस्तात वृद्धयोर्हृतराज्ययोः ।
कथमन्धद्वयस्यास्य यष्टिरेका न वर्जिता ॥ २२ ॥

तात ! हम दोनों बूढ़े हुए। हमारा राज्य भी तुमने छीन लिया। ऐसी दशामें हमारी एक ही संतानको—हम दो अन्धोंके लिये एक ही लाठीके सहारेको तुमने क्यों नहीं जीवित छोड़ दिया ? ॥ २२ ॥

शेषे ह्यवस्थिते तात पुत्राणामन्तके त्वयि ।
न मे दुःखं भवेदेतद् यदि त्वं धर्ममाचरेः ॥ २३ ॥

तात ! तुम मेरे सारे पुत्रोंके लिये यमराज बन गये। यदि तुम धर्मका आचरण करते और मेरा एक पुत्र भी शेष रह जाता तो मुझे इतना दुःख नहीं होता ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु गान्धारी युधिष्ठिरमपृच्छत ।
क स राजेति सक्रोधा पुत्रपौत्रवधार्दिता ॥ २४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! भीमसेनसे ऐसा कहकर अपने पुत्रों और पौत्रोंके वधसे पीड़ित हुई गान्धारीने कुपित होकर पूछा—'कहाँ है वह राजा युधिष्ठिर ?' ॥ २४ ॥

तमभ्यगच्छद् राजेन्द्रो वेपमानः कृताञ्जलिः ।
युधिष्ठिरस्त्विदं तत्र मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २५ ॥
पुत्रहन्ता नृशंसोऽहं तव देवि युधिष्ठिरः ।
शापार्हः पृथिवीनाशे हेतुभूतः शपस्व माम् ॥ २६ ॥

यह सुनकर महाराज युधिष्ठिर काँपते हुए हाथ जोड़े उनके सामने आये और बड़ी मीठी वाणीमें बोले—'देवि ! आपके पुत्रोंका संहार करनेवाला क्रूरकर्मा युधिष्ठिर मैं हूँ। पृथ्वीभरके राजाओंका नाश करानेमें मैं ही हेतु हूँ, इसलिये शापके योग्य हूँ। आप मुझे शाप दे दीजिये ॥ २५-२६ ॥

न हि मे जीवितेनार्थो न राज्येन धनेन वा ।
तादृशान् सुहृदो हत्वा मूढस्यास्य सुहृद्द्रुहः ॥ २७ ॥

'मैं अपने सुहृदोंका द्रोही और अविवेकी हूँ। वैसे-वैसे श्रेष्ठ सुहृदोंका वध करके अब मुझे जीवन, राज्य अथवा धनसे कोई प्रयोजन नहीं है' ॥ २७ ॥

तमेवंवादिनं भीतं संनिकर्षगतं तदा ।
नोवाच किंचिद् गान्धारी निःश्वासपरमा भृशम् ॥ २८ ॥

जब निकट आकर डरे हुए राजा युधिष्ठिरने, ऐसी बातें कहीं, तब गान्धारी देवी जोर-जोरसे साँस खींचती हुई सिसकने लगीं। वे मुँहसे कुछ बोल न सकीं ॥ २८ ॥

तस्यावनतदेहस्य पादयोर्निपतिष्यतः ।
युधिष्ठिरस्य नृपतेर्धर्मज्ञा दीर्घदर्शिनी ॥ २९ ॥
अंगुल्यग्राणि ददृशे देवी पट्टान्तरेण सा ।
ततः स कुनखीभूतो दर्शनीयनखो नृपः ॥ ३० ॥

राजा युधिष्ठिर शरीरको झुकाकर गान्धारीके चरणोंपर गिर जाना चाहते थे। इतनेहीमें धर्मको जाननेवाली दूरदर्शिनी देवी गान्धारीने पट्टीके भीतरसे ही राजा युधिष्ठिरके पैरोंकी अङ्गुलियोंके अग्रभाग देख लिये। इतनेहीसे राजाके नख काले पड़ गये। इसके पहले उनके नख बड़े ही सुन्दर और दर्शनीय थे ॥ २९-३० ॥

तं दृष्ट्वा चार्जुनोऽगच्छद् वासुदेवस्य पृष्ठतः ।
एवं संचेष्टमानांस्तानितश्चेतश्च भारत ॥ ३१ ॥
गान्धारी विगतक्रोधा सान्त्वयामास मातृवत् ।

उनकी यह अवस्था देख अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके पीछे जाकर छिप गये। भारत ! उन्हें इस प्रकार इधर-उधर छिपनेकी चेष्टा करते देख गान्धारीका क्रोध उतर गया और उन्होंने उन सबको स्नेहमयी माताके समान सान्त्वना दी॥

तया ते समनुज्ञाता मातरं वीरमातरम् ॥ ३२ ॥
अभ्यगच्छन्त सहिताः पृथां पृथुलवक्षसः ।

फिर उनकी आज्ञा ले चौड़ी छातीवाले सभी पाण्डव एक साथ वीरजननी माता कुन्तीके पास गये ॥ ३२½ ॥

चिरस्य दृष्ट्वा पुत्रान् सा पुत्राधिभिरभिप्लुता ॥ ३३ ॥
बाष्पमाहारयद् देवी वस्त्रेणावृत्य वै मुखम् ।

कुन्तीदेवी दीर्घकालके बाद अपने पुत्रोंको देखकर उनके कष्टोंका स्मरण करके करुणामें डूब गयीं और अञ्चलसे मुँह ढककर आँसू बहाने लगीं ॥ ३३½ ॥

ततो बाष्पं समुत्सृज्य सह पुत्रैस्तदा पृथा ॥ ३४ ॥
अपश्यदेतान्शस्त्रौघैर्बहुधा क्षतविक्षतान् ।

पुत्रोंसहित आँसू बहाकर उन्होंने उनके शरीरोंपर बारंबार दृष्टिपात किया। वे सभी अस्त्र-शस्त्रोंकी चोटसे घायल हो रहे थे ॥ ३४½ ॥

सा तानेकैकशः पुत्रान् संस्पृशन्ती पुनः पुनः ॥ ३५ ॥
अन्वशोचत दुःखार्ता द्रौपदीं च हतात्मजाम् ।
रुदतीमथ पाञ्चालीं ददर्श पतितां भुवि ॥ ३६ ॥

बारी-बारीसे पुत्रोंके शरीरपर बारंबार हाथ फेरती हुई कुन्ती दुःखसे आतुर हो उस द्रौपदीके लिये शोक करने लगीं, जिसके सभी पुत्र मारे गये थे। इतनेमें ही उन्होंने देखा कि द्रौपदी पास ही पृथ्वीपर गिरकर रो रही है ॥ ३५-३६ ॥

द्रौपद्युवाच

आर्ये पौत्राः क ते सर्वे सौभद्रसहिता गताः ।
न त्वां तेऽद्याभिगच्छन्ति चिरं दृष्ट्वा तपस्विनीम् ॥ ३७ ॥
किं नु राज्येन वै कार्यं विहीनायाः सुतैर्मम ।

द्रौपदी बोली—आर्ये ! अभिमन्युसहित वे आपके सभी पौत्र कहाँ चले गये ? वे दीर्घकालके बाद आयी हुई आज आप तपस्विनी देवीको देखकर आपके निकट क्यों नहीं आ रहे हैं ? अपने पुत्रोंसे हीन होकर अब इस राज्यसे हमें क्या कार्य है ? ॥ ३७½ ॥

तां समाश्वासयामास पृथा पृथुललोचना ॥ ३८ ॥
उत्थाप्य याज्ञसेनीं तु रुदतीं शोककर्शिताम् ।
तयैव सहिता चापि पुत्रैरनुगता नृप ॥ ३९ ॥
अभ्यगच्छत गान्धारीमार्तामार्ततरा स्वयम् ।

नरेश्वर ! विशाल नेत्रोंवाली कुन्तीने शोकसे कातर हो रोती हुई द्रुपदकुमारीको उठाकर धीरज बँधाया और उसके साथ ही वे स्वयं भी अत्यन्त आर्त होकर शोकाकुल गान्धारीके पास गयीं । उस समय उनके पुत्र पाण्डव भी उनके पीछे-पीछे गये ॥ ३८-३९½ ॥

वैशम्पायन उवाच

तामुवाचाथ गान्धारी सह वध्वा यशस्विनीम्॥ ४० ॥
मैवं पुत्रीति शोकार्ता पश्य मामपि दुःखिताम् ।
मन्ये लोकविनाशोऽयं कालपर्यायनोदितः ॥ ४१ ॥
अवश्यभावी सम्प्राप्तः स्वभावाल्लोमहर्षणः ।
इदं तत् समनुप्राप्तं विदुरस्य वचो महत् ॥ ४२ ॥
असिद्धानुनये कृष्णे यदुवाच महामतिः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! गान्धारीने बहू द्रौपदी और यशस्विनी कुन्तीसे कहा—'बेटी ! इस प्रकार शोकसे व्याकुल न होओ । देखो, मैं भी तो दुःखमें डूबी हुई हूँ । मैं समझती हूँ, समयके उलट-फेरसे प्रेरित होकर यह सम्पूर्ण जगत्का विनाश हुआ है, जो स्वभावसे ही रोमाञ्चकारी है । यह काण्ड अवश्यम्भावी था, इसीलिये प्राप्त हुआ है। जब संधि करानेके विषयमें श्रीकृष्णकी अनुनय-विनय सफल नहीं हुई, उस समय परम बुद्धिमान् विदुरजीने जो महत्त्वपूर्ण बात कही थी, उसीके अनुसार यह सब कुछ सामने आया है ॥ ४०-४२½ ॥

तस्मिन्नपरिहार्येऽर्थे व्यतीते च विशेषतः ॥ ४३ ॥
मा शुचो न हि शोच्यास्ते संग्रामे निधनं गताः ।
यथैवाहं तथैव त्वं को नावाश्वासयिष्यति ।
ममैव ह्यपराधेन कुलमग्र्यं विनाशितम् ॥ ४४ ॥

'जब यह विनाश किसी तरह टल नहीं सकता था, विशेषतः जब सब कुछ होकर समाप्त हो गया, तो अब तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये । वे सभी वीर संग्राममें मारे गये हैं, अतः शोक करनेके योग्य नहीं हैं । आज जैसी मैं हूँ, वैसी ही तुम भी हो । हम दोनोंको कौन धीरज बँधायेगा ? मेरे ही अपराधसे इस श्रेष्ठ कुलका संहार हुआ है' ॥ ४३-४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि पृथापुत्रदर्शने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें कुन्तीको अपने पुत्रोंका दर्शनविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

(स्त्रीविलापपर्व)

षोडशोऽध्यायः

वेदव्यासजीके वरदानसे दिव्य दृष्टिसम्पन्न हुई गान्धारीका युद्धस्थलमें मारे गये योद्धाओं तथा रोती हुई बहुओंको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु गान्धारी कुरूणामवकर्तनम् ।
अपश्यत्तत्र तिष्ठन्ती सर्वं दिव्येन चक्षुषा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर गान्धारी देवीने वहीं खड़ी रहकर अपनी दिव्य दृष्टिसे कौरवोंका वह सारा विनाशस्थल देखा ॥ १ ॥

पतिव्रता महाभागा समानव्रतचारिणी ।
उग्रेण तपसा युक्ता सततं सत्यवादिनी ॥ २ ॥

गान्धारी बड़ी ही पतिव्रता, परम सौभाग्यवती, पतिके समान व्रतका पालन करनेवाली, उग्र तपस्यासे युक्त तथा सदा सत्य बोलनेवाली थीं ॥ २ ॥

वरदानेन कृष्णस्य महर्षेः पुण्यकर्मणः ।
दिव्यज्ञानबलोपेता विविधं पर्यदेवयत् ॥ ३ ॥

पुण्यात्मा महर्षि व्यासके वरदानसे वे दिव्य-ज्ञान-बलसे सम्पन्न हो गयी थीं; अतः रणभूमिका दृश्य देखकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगीं ॥ ३ ॥

ददर्श सा बुद्धिमती दूरादपि यथान्तिके ।
रणाजिरं नृवीराणामद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ ४ ॥

बुद्धिमती गान्धारीने नरवीरोंके उस अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी समराङ्गणको दूरसे भी उसी तरह देखा, जैसे निकटसे देखा जाता है ॥ ४ ॥

अस्थिकेशवसाकीर्णं शोणितौघपरिप्लुतम् ।
शरीरैर्बहुसाहस्रैर्विनिकीर्णं समन्ततः ॥ ५ ॥

वह रणक्षेत्र हड्डियों, केशों और चर्बियोंसे भरा था, रक्तके प्रवाहसे आप्लावित हो रहा था, कई हजार लाशें वहाँ चारों ओर बिखरी हुई थीं ॥ ५ ॥

गजाश्वरथयोधानामावृतं रुधिराविलैः ।
शरीरैरशिरस्कैश्च विदेहैश्च शिरोगणैः ॥ ६ ॥

हाथीसवार, घुड़सवार तथा रथी योद्धाओंके रक्तसे मलिन हुए बिना सिरके अगणित धड़ और बिना धड़के असंख्य मस्तक उस रणभूमिको ढँके हुए थे ॥ ६ ॥

गजाश्वनरनारीणां निःस्वनैरभिसंवृतम् ।
शृगालबककाकोलकङ्ककाकनिषेवितम् ॥ ७ ॥

हाथियों, घोड़ों, मनुष्यों और स्त्रियोंके आर्तनादसे वह सारा युद्धस्थल गूँज रहा था । सियार, बगुले, काले कौए, कङ्क और काक उस भूमिका सेवन करते थे ॥ ७ ॥

रक्षसां पुरुषादानां मोदनं कुरराकुलम् ।
अशिवाभिः शिवाभिश्च नादितं गृध्रसेवितम् ॥ ८ ॥

वह स्थान नरभक्षी राक्षसोंको आनन्द दे रहा था । वहाँ सब ओर कुरर पक्षी छा रहे थे । अमङ्गलमयी गीदड़ियाँ अपनी बोली बोल रही थीं, गीध सब ओर बैठे हुए थे ॥८॥

ततो व्यासाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रो महीपतिः ।

पाण्डुपुत्राश्च ते सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ९ ॥

उस समय भगवान् व्यासकी आज्ञा पाकर राजा धृतराष्ट्र तथा युधिष्ठिर आदि समस्त पाण्डव रणभूमिकी ओर चले ॥

वासुदेवं पुरस्कृत्य हतबन्धुं च पार्थिवम् ।
कुरुस्त्रियः समासाद्य जग्मुरायोधनं प्रति ॥ १० ॥

जिनके बन्धु-बान्धव मारे गये थे, उन राजा धृतराष्ट्र तथा भगवान् श्रीकृष्णको आगे करके कुरुकुलकी स्त्रियोंको साथ ले वे सब लोग युद्धस्थलमें गये ॥ १० ॥

समासाद्य कुरुक्षेत्रं ताः स्त्रियो निहतेश्वराः ।
अपश्यन्त हतांस्तत्र पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् पतीन् ॥ ११ ॥
क्रव्यादैर्भक्ष्यमाणान् वै गोमायुबलवायसैः ।
भूतैः पिशाचै रक्षोभिर्विविधैश्च निशाचरैः ॥ १२ ॥

कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर उन अनाथ स्त्रियोंने वहाँ मारे गये अपने पुत्रों, भाइयों, पिताओं तथा पतियोंके शरीरोंको देखा, जिन्हें मांस-भक्षी जीव-जन्तु, गीदड़समूह, कौए, भूत, पिशाच, राक्षस और नाना प्रकारके निशाचर नोच-नोचकर खा रहे थे॥

रुद्राक्रीडनिभं दृष्ट्वा तदा विशसनं स्त्रियः ।
महार्हेभ्योऽथ यानेभ्यो विक्रोशन्त्यो निपेतिरे ॥ १३ ॥

रुद्रकी क्रीडास्थलीके समान उस रणभूमिको देखकर वे स्त्रियाँ अपने बहुमूल्य रथोंसे क्रन्दन करती हुई नीचे गिर पड़ीं ॥ १३ ॥

अदृष्टपूर्वं पश्यन्त्यो दुःखार्ता भरतस्त्रियः ।
शरीरेष्वस्खलन्नन्याः पतन्त्यश्चापरा भुवि ॥ १४ ॥

जिसे कभी देखा नहीं था, उस अद्भुत रणक्षेत्रको देखकर भरतकुलकी कुछ स्त्रियाँ दुःखसे आतुर हो लाशोंपर गिर पड़ीं और दूसरी बहुत-सी स्त्रियाँ धरतीपर गिर गयीं ॥

श्रान्तानां चाप्यनाथानां नासीत् काचन चेतना ।
पाञ्चालकुरुयोषाणां कृपणं तदभून्महत् ॥ १५ ॥

उन थकी-माँदी और अनाथ हुई पाञ्चालों तथा कौरवोंकी स्त्रियोंको वहाँ चेत नहीं रह गया था । उन सबकी बड़ी दयनीय दशा हो गयी थी ॥ १५ ॥

दुःखोपहतचित्ताभिः समन्तादनुनादितम् ।
दृष्ट्वाऽऽयोधनमत्युग्रं धर्मज्ञा सुबलात्मजा ॥ १६ ॥
ततः सा पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य पुरुषोत्तमम् ।
कुरूणां वैशसं दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥

दुःखसे व्याकुलचित्त हुई युवतियोंके करुण-क्रन्दनसे वह अत्यन्त भयंकर युद्धस्थल सब ओरसे गूँज उठा । यह देखकर धर्मको जाननेवाली सुबलपुत्री गान्धारीने कमलनयन श्रीकृष्णको सम्बोधित करके कौरवोंके उस विनाशपर दृष्टिपात करते हुए कहा—॥ १६-१७ ॥

पश्यैताः पुण्डरीकाक्ष स्नुषा मे निहतेश्वराः ।
प्रकीर्णकेशाः क्रोशन्तीः कुररीरिव माधव ॥ १८ ॥

'कमलनयन माधव ! मेरी इन विधवा पुत्रवधुओंकी ओर देखो, जो केश बिखराये कुररीकी भाँति विलाप कर रही हैं ॥ १८ ॥

अमूस्त्वभिसमागम्य स्मरन्त्यो भर्तृजान् गुणान् ।
पृथगेवाभ्यधावन्त्यः पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् पतीन् ॥ १९ ॥

'वे अपने पतियोंके गुणोंका स्मरण करती हुई उनकी लाशोंके पास जा रही हैं और पतियों, भाइयों, पिताओं तथा पुत्रोंके शरीरोंकी ओर पृथक्-पृथक् दौड़ रही हैं ॥ १९ ॥

वीरसूभिर्महाराज हतपुत्राभिरावृतम् ।
क्वचिच्च वीरपत्नीभिर्हतवीराभिरावृतम् ॥ २० ॥

'महाराज ! कहीं तो जिनके पुत्र मारे गये हैं उन वीरप्रसविनी माताओंसे और कहीं जिनके पति वीरगतिको प्राप्त हो गये हैं, उन वीरपत्नियोंसे यह युद्धस्थल घिर गया है ॥

शोभितं पुरुषव्याघ्रैः कर्णभीष्माभिमन्युभिः ।
द्रोणद्रुपदशल्यैश्च ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २१ ॥

'पुरुषसिंह कर्ण, भीष्म, अभिमन्यु, द्रोण, द्रुपद और शल्य-जैसे वीरोंसे, जो प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी थे, यह रणभूमि सुशोभित है ॥ २१ ॥

काञ्चनैः कवचैर्निष्कैर्मणिभिश्च महात्मनाम् ।
अङ्गदैर्हस्तकेयूरैः स्रग्भिश्च समलङ्कृतम् ॥ २२ ॥

'उन महामनस्वी वीरोंके सुवर्णमय कवचों, निष्कों, मणियों, अङ्गदों, केयूरों और हारोंसे समराङ्गण विभूषित दिखायी देता है ॥ २२ ॥

वीरबाहुविसृष्टाभिः शक्तिभिः परिघैरपि ।
खड्गैश्च विविधैस्तीक्ष्णैः सशरैश्च शरासनैः ॥ २३ ॥
क्रव्यादसंघैर्मुदितैस्तिष्ठद्भिः सहितैः क्वचित् ।
क्वचिदाक्रीडमानैश्च शयानैश्चापरैः क्वचित् ॥ २४ ॥
एतदेवंविधं वीर सम्पश्यायोधनं विभो ।
पश्यमाना हि दह्यामि शोकेनाहं जनार्दन ॥ २५ ॥

'कहीं वीरोंकी भुजाओंसे छोड़ी गयी शक्तियाँ पड़ी हैं, कहीं परिघ, नाना प्रकारके तीखे खड्ग और बाणसहित धनुष गिरे हुए हैं । कहीं झुंड-के-झुंड मांसभक्षी जीव-जन्तु आनन्दमग्न होकर एक साथ खड़े हैं, कहीं वे खेल रहे हैं और कहीं दूसरे-दूसरे जन्तु सोये पड़े हैं । वीर ! प्रभो ! इस प्रकार इन सबसे भरे हुए युद्धस्थलको देखो । जनार्दन ! मैं तो इसे देखकर शोकसे दग्ध हुई जाती हूँ ॥ २३-२५ ॥

पञ्चालानां कुरूणां च विनाशे मधुसूदन ।
पञ्चानामपि भूतानामहं वधमचिन्तयम् ॥ २६ ॥

'मधुसूदन ! इन पाञ्चाल और कौरव वीरोंके मारे जानेसे तो मेरे मनमें यह धारणा हो रही है कि पाँचों भूतोंका ही विनाश हो गया ॥ २६ ॥

तान् सुपर्णाश्च गृध्राश्च कर्षयन्त्यसृगुक्षिताः ।
विगृह्य चरणैर्गृध्रा भक्षयन्ति सहस्रशः ॥ २७ ॥

'उन वीरोंको खूनसे भीगे हुए गरुड़ और गीध इधर-उधर खींच रहे हैं । सहस्रों गीध उनके पैर पकड़-पकड़कर खा रहे हैं ॥ २७ ॥

जयद्रथस्य कर्णस्य तथैव द्रोणभीष्मयोः ।
अभिमन्योर्विनाशं च कश्चिन्तयितुमर्हति ॥ २८ ॥

'इस युद्धमें जयद्रथ, कर्ण, द्रोणाचार्य, भीष्म और अभिमन्यु-जैसे वीरोंका विनाश हो जायगा, यह कौन सोच सकता था ? ॥ २८ ॥

अवध्यकल्पान् निहतान् गतसत्त्वानचेतसः ।
गृध्रकङ्कवटश्येनश्वशृगालादनीकृतान् ॥ २९ ॥

'जो अवध्य समझे जाते थे, वे भी मारे गये और अचेत एवं प्राणशून्य होकर यहाँ पड़े हैं । गीध, कंक, बटेर, बाज, कुत्ते और सियार उन्हें अपना आहार बना रहे हैं ॥ २९ ॥

अमर्षवशमापन्नान् दुर्योधनवशे स्थितान् ।
पश्येमान् पुरुषव्याघ्रान् संशान्तान् पावकानिव॥ ३० ॥

'दुर्योधनके अधीन रहकर अमर्षके वशीभूत हो ये पुरुषसिंह वीरगण बुझी हुई आगके समान शान्त हो गये हैं । इनकी ओर दृष्टिपात तो करो ॥ ३० ॥

शयाना ये पुरा सर्वे मृदूनि शयनानि च ।
विपन्नास्तेऽद्य वसुधां विवृतामधिशेरते ॥ ३१ ॥

'जो लोग पहले कोमल बिछौनोंपर सोया करते थे, वे सभी आज मरकर नंगी भूमिपर सो रहे हैं ॥ ३१ ॥

बन्दिभिः सततं काले स्तुवद्भिरभिनन्दिताः ।
शिवानामशिवा घोराः शृण्वन्ति विविधा गिरः॥ ३२ ॥

'जिन्हें सदा ही समय-समयपर स्तुति करनेवाले बन्दीजन अपने वचनोंद्वारा आनन्दित करते थे, वे ही अब सियारिनोंकी अमङ्गलसूचक भाँति-भाँतिकी बोलियाँ सुन रहे हैं ॥ ३२ ॥

ये पुरा शेरते वीराः शयनेषु यशस्विनः ।
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गास्तेऽद्य पांसुषु शेरते ॥ ३३ ॥

'जो यशस्वी वीर पहले अपने अङ्गोंमें चन्दन और अगुरुचूर्णसे चर्चित हो सुखदायिनी शय्याओंपर सोते थे, वे ही आज धूलमें लोट रहे हैं ॥ ३३ ॥

तेषामाभरणान्येते गृध्रगोमायुवायसाः ।
आक्षिपन्ति शिवा घोरा विनदन्त्यः पुनः पुनः॥ ३४ ॥

'उनके आभूषणोंको ये गीध, गीदड़, कौए और भयानक गीदड़ियाँ बारंबार चिल्लाती हुई इधर-उधर फेंकती हैं॥३४॥

बाणान् विनिशितान् पीतान् निस्त्रिंशान् विमला गदाः।
युद्धाभिमानिनः सर्वे जीवन्त इव बिभ्रति ॥ ३५ ॥

'ये सभी युद्धाभिमानी वीर जीवित पुरुषोंकी भाँति इस समय भी तीखे बाण, पानीदार तलवार और चमकीली गदाएँ हाथोंमें लिये हुए हैं ॥ ३५ ॥

सुरूपवर्णा बहवः क्रव्यादैरवघट्टिताः ।
ऋषभप्रतिरूपाश्च शेरते हरितस्रजः ॥ ३६ ॥

'सुन्दर रूप और कान्तिवाले, साँड़ोंके समान हृष्ट-पुष्ट तथा हरे रंगके हार पहने हुए बहुत-से योद्धा यहाँ सोये पड़े हैं और मांसभक्षी जन्तु इन्हें उलट-पलट रहे हैं ॥ ३६ ॥

अपरे पुनरालिङ्ग्य गदाः परिघबाहवः ।
शेरतेऽभिमुखाः शूरा दयिता इव योषितः ॥ ३७ ॥

'परिघके समान मोटी बाँहोंवाले दूसरे शूरवीर प्रेयसी युवतियोंकी भाँति गदाओंका आलिङ्गन करके सम्मुख सो रहे हैं॥

बिभ्रतः कवचान्यन्ये विमलान्यायुधानि च ।
न धर्षयन्ति क्रव्यादा जीवन्तीति जनार्दन ॥ ३८ ॥

'जनार्दन ! बहुत-से योद्धा चमकीले कवच और आयुध धारण किये हुए हैं, जिससे उन्हें जीवित समझकर मांसभक्षी जन्तु उनपर आक्रमण नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥

क्रव्यादैः कृष्यमाणानामपरेषां महात्मनाम् ।
शातकौम्भ्यः स्रजश्चित्रा विप्रकीर्णाः समन्ततः॥ ३९ ॥

'दूसरे महामनस्वी वीरोंको मांसाहारी जीव इधर-उधर खींच रहे हैं, जिससे सोनेकी बनी हुई उनकी विचित्र मालाएँ सब ओर बिखर गयी हैं ॥ ३९ ॥

एते गोमायवो भीमा निहतानां यशस्विनाम् ।
कण्ठान्तरगतान् हारानाक्षिपन्ति सहस्रशः ॥ ४० ॥

'यहाँ मारे गये यशस्वी वीरोंके कण्ठमें पड़े हुए हारोंको ये सहस्रों भयानक गीदड़ खींचते और झटकते हैं ॥ ४० ॥

सर्वेष्वपररात्रेषु याननन्दन्त बन्दिनः ।
स्तुतिभिश्च परार्ध्याभिरुपचारैश्च शिक्षिताः ॥ ४१ ॥
तानिमाः परिदेवन्ति दुःखार्ताः परमाङ्गनाः ।
कृपणं वृष्णिशार्दूल दुःखशोकार्दिता भृशम् ॥ ४२ ॥

'वृष्णिसिंह ! प्रायः प्रत्येक रात्रिके पिछले पहरमें सुशिक्षित बन्दीजन उत्तम स्तुतियों और उपचारोंद्वारा जिन्हें आनन्दित करते थे, उन्हींके पास आज ये दुःख और शोकसे अत्यन्त पीड़ित हुई सुन्दरी युवतियाँ करुण विलाप कर रही हैं ॥

रक्तोत्पलवनानीव विभान्ति रुचिराणि च ।
मुखानि परमस्त्रीणां परिशुष्काणि केशव ॥ ४३ ॥

'केशव ! इन सुन्दरियोंके सूखे हुए सुन्दर मुख लाल कमलोंके समूहकी भाँति शोभा पा रहे हैं ॥ ४३ ॥

रुदिताद् विरता ह्येता ध्यायन्त्यः सपरिच्छदाः ।
कुरुस्त्रियोऽभिगच्छन्ति तेन तेनैव दुःखिताः ॥ ४४ ॥

'ये कुरुकुलकी स्त्रियाँ रोना बंद करके स्वजनोंका चिन्तन करती हुई परिजनोंसहित उन्हींकी खोजमें जाती और दुखी होकर उन-उन व्यक्तियोंसे मिल रही हैं ॥ ४४ ॥

एतान्यादित्यवर्णानि तपनीयनिभानि च ।
रोषरोदनताम्राणि वक्त्राणि कुरुयोषिताम् ॥ ४५ ॥

'कौरववंशकी युवतियोंके ये सूर्य और सुवर्णके समान कान्तिमान् मुख रोष और रोदनसे ताम्रवर्णके हो गये हैं॥४५॥

श्यामानां वरवर्णानां गौरीणामेकवाससाम् ।
दुर्योधनवरस्त्रीणां पश्य वृन्दानि केशव ॥ ४६ ॥

'केशव ! सुन्दर कान्तिसे सम्पन्न, एकवस्त्रधारिणी तथा श्याम गौरवर्णवाली दुर्योधनकी इन सुन्दरी स्त्रियोंकी टोलियोंको देखो ॥ ४६ ॥

आसामपरिपूर्णार्थं निशाम्य परिदेवितम् ।
इतरेतरसंक्रन्दान्न विजानन्ति योषितः ॥ ४७ ॥

'एक दूसरीकी रोदन-ध्वनिसे मिल जानेके कारण इनके विलापका अर्थ पूर्णरूपसे समझमें नहीं आता, उसे सुनकर अन्य स्त्रियाँ भी कुछ नहीं समझ पाती हैं ॥ ४७ ॥

एता दीर्घमिवोच्छ्वस्य विक्रुश्य च विलप्य च ।
विस्पन्दमाना दुःखेन वीरा जहति जीवितम् ॥ ४८ ॥

'ये वीर वनिताएँ लंबी साँस खींचकर स्वजनोंको पुकार-पुकारकर करुण विलाप करके दुःखसे छटपटाती हुई अपने प्राण त्याग देना चाहती हैं ॥ ४८ ॥

बह्व्यो दृष्ट्वा शरीराणि क्रोशन्ति विलपन्ति च ।
पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति शिरांसि मृदुपाणयः ॥ ४९ ॥

'बहुत-सी स्त्रियाँ स्वजनोंकी लाशोंको देखकर रोती, चिल्लाती और विलाप करती हैं। कितनी ही कोमल हाथोंवाली कामिनियाँ अपने हाथोंसे सिर पीट रही हैं ॥ ४९ ॥

शिरोभिः पतितैर्हस्तैः सर्वाङ्गैर्यूथशः कृतैः ।
इतरेतरसम्पृक्तैराकीर्णा भाति मेदिनी ॥ ५० ॥

'कटकर गिरे हुए मस्तकों, हाथों और सम्पूर्ण अङ्गोंके ढेर लगे हैं। वे सभी एकके ऊपर एक करके पड़े हैं। उनसे यहाँकी सारी पृथ्वी ढँकी हुई जान पड़ती है ॥ ५० ॥

विशिरस्कानथो कायान् दृष्ट्वा ह्येताननिन्दितान् ।
मुह्यन्त्यनुगता नार्यो विदेहानि शिरांसि च ॥ ५१ ॥

'इन बिना मस्तकके सुन्दर धड़ों और बिना धड़के मस्तकोंको देख-देखकर ये अनुगामिनी स्त्रियाँ मूर्छित-सी हो रही हैं ॥ ५१ ॥

शिरः कायेन संधाय प्रेक्षमाणा विचेतसः ।
अपश्यन्त्योऽपरं तत्र नेदमस्येति दुःखिताः ॥ ५२ ॥

'कितनी ही अचेत-सी होकर स्वजनोंकी खोज करनेवाली स्त्रियाँ एक मस्तकको निकटवर्ती धड़के साथ जोड़ करके देखती हैं और जब वह मस्तक उससे नहीं जुड़ता तथा दूसरा कोई मस्तक वहाँ देखनेमें नहीं आता तो वे दुखी होकर कहने लगती हैं कि यह तो उनका सिर नहीं है ॥ ५२ ॥

बाहूरुचरणानन्यान् विशिखोन्मथितान् पृथक् ।
संदधत्योऽसुखाविष्टा मूर्च्छन्त्येताः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

'बाणोंसे कट-कटकर अलग हुई बाँहों, जाँघों और पैरोंको जोड़ती हुई ये दुखी अबलाएँ बारंबार मूर्छित हो जाती हैं ॥

उत्कृत्तशिरसश्चान्यान् विजग्धान् मृगपक्षिभिः।
दृष्ट्वा काश्चिन्न जानन्ति भर्तॄन् भरतयोषितः ॥ ५४ ॥

'कितनी ही लाशोंके सिर कटकर गायब हो गये हैं, कितनोंको मांसभक्षी पशुओं और पक्षियोंने खा डाला है; अतः उनको देखकर भी ये हमारे ही पति हैं, इस रूपमें भरतकुलकी स्त्रियाँ पहचान नहीं पाती हैं ॥ ५४ ॥

पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति शिरांसि मधुसूदन ।
प्रेक्ष्य भ्रातॄन् पितॄन् पुत्रान् पतींश्च निहतान् परैः ॥५५॥

'मधुसूदन ! देखो, बहुत-सी स्त्रियाँ शत्रुओंद्वारा मारे गये भाइयों, पिताओं, पुत्रों और पतियोंको देखकर अपने हाथोंसे सिर पीट रही हैं ॥ ५५ ॥

बाहुभिश्च सखड्गैश्च शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
अगम्यकल्पा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ ५६ ॥

'खड्गयुक्त भुजाओं और कुण्डलोंसहित मस्तकोंसे ढँकी हुई इस पृथ्वीपर चलना-फिरना असम्भव हो गया है। यहाँ मांस और रक्तकी कीच जम गयी है ॥ ५६ ॥

न दुःखेषूचिताः पूर्वं दुःखं गाहन्त्यनिन्दिताः ।
भ्रातृभिः पतिभिः पुत्रैरुपाकीर्णा वसुंधरा ॥ ५७ ॥

'ये सती साध्वी सुन्दरी स्त्रियाँ पहले कभी ऐसे दुःखमें नहीं पड़ी थीं; किंतु आज दुःखके समुद्रमें डूब रही हैं। यह सारी पृथ्वी इनके भाइयों, पतियों और पुत्रोंसे ढँक गयी है ॥ ५७ ॥

यूथानीव किशोरीणां सुकेशीनां जनार्दन ।
स्नुषाणां धृतराष्ट्रस्य पश्य वृन्दान्यनेकशः ॥ ५८ ॥

'जनार्दन ! देखो, महाराज धृतराष्ट्रकी सुन्दर केशोंवाली पुत्रवधुओंकी ये कई टोलियाँ बछेड़ियोंके झुंडके समान दिखायी दे रही हैं ॥ ५८ ॥

इतो दुःखतरं किं नु केशव प्रतिभाति मे ।
यदिमाः कुर्वते सर्वा रवमुच्चावचं स्त्रियः ॥ ५९ ॥

'केशव ! मेरे लिये इससे बढ़कर महान् दुःख और क्या होगा कि ये सारी बहुएँ यहाँ आकर अनेक प्रकारसे आर्तनाद कर रही हैं ॥ ५९ ॥

नूनमाचरितं पापं मया पूर्वेषु जन्मसु ।
या पश्यामि हतान् पुत्रान् पौत्रान् भ्रातॄंश्च माधव॥६०॥

'माधव ! निश्चय ही मैंने पूर्वजन्मोंमें कोई बड़ा भारी पाप किया है, जिससे आज अपने पुत्रों, पौत्रों और भाइयोंको यहाँ मारा गया देख रही हूँ' ॥ ६० ॥

एवमार्ता विलपती समाभाष्य जनार्दनम् ।
गान्धारी पुत्रशोकार्ता ददर्श निहतं सुतम् ॥ ६१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णको सम्बोधित करके पुत्रशोकसे व्याकुल हो इस प्रकार आर्तविलाप करती हुई गान्धारीने युद्धमें मारे गये अपने पुत्र दुर्योधनको देखा ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि आयोधनदर्शने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें युद्धदर्शनविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

दुर्योधन तथा उसके पास रोती हुई पुत्रवधूको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप

वैशम्पायन उवाच

दुर्योधनं हतं दृष्ट्वा गान्धारी शोककर्शिता ।
सहसा न्यपतद् भूमौ छिन्नेव कदली वने ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! दुर्योधनको मारा गया देखकर शोकसे पीड़ित हुई गान्धारी वनमें कटे हुए केलेके वृक्षकी तरह सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ १ ॥

सा तु लब्ध्वा पुनः संज्ञां विक्रुश्य च विलप्य च।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य शयानं रुधिरोक्षितम् ॥ २ ॥
परिष्वज्य च गान्धारी कृपणं पर्यदेवयत्।
हा हा पुत्रेति शोकार्ता विललापाकुलेन्द्रिया ॥ ३ ॥

पुनः होशमें आनेपर अपने पुत्रको पुकार-पुकारकर वे विलाप करने लगीं। दुर्योधनको खूनसे लथपथ होकर सोया देख उसे हृदयसे लगाकर गान्धारी दीन होकर रोने लगीं। उनकी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी थीं। वे शोकसे आतुर हो 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहकर विलाप करने लगीं ॥ २-३ ॥

सुगूढजत्रुविपुलं हारनिष्कविभूषितम्।
वारिणा नेत्रजेनोरः सिंचन्ती शोकतापिता ॥ ४ ॥

दुर्योधनके गलेकी विशाल हड्डी मांससे छिपी हुई थी। उसने गलेमें हार और निष्क पहन रक्खे थे। उन आभूषणोंसे विभूषित बेटेके वक्षःस्थलको आँसुओंसे सींचती हुई गान्धारी शोकाग्निसे संतप्त हो रही थीं ॥ ४ ॥

समीपस्थं हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत्।
उपस्थितेऽस्मिन् संग्रामे ज्ञातीनां संक्षये विभो॥ ५ ॥
मामयं प्राह वार्ष्णेय प्राञ्जलिर्नृपसत्तमः।
अस्मिन् ज्ञातिसमुद्धर्षे जयमम्बा ब्रवीतु मे ॥ ६ ॥

वे पास ही खड़े हुए श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहने लगीं—'वृष्णिनन्दन! प्रभो! भाई-बन्धुओंका विनाश करनेवाला जब यह भीषण संग्राम उपस्थित हुआ था, उस समय इस नृपश्रेष्ठ दुर्योधनने मुझसे हाथ जोड़कर कहा—'माताजी! कुटुम्बीजनोंके इस संग्राममें आप मुझे मेरी विजयके लिये आशीर्वाद दें' ॥ ५-६ ॥

इत्युक्ते जानती सर्वमहं स्वव्यसनागमम्।
अब्रवं पुरुषव्याघ्र यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ७ ॥

'पुरुषसिंह श्रीकृष्ण! उसके ऐसा कहनेपर मैं यह सब जानती थी कि मुझपर बड़ा भारी संकट आनेवाला है, तथापि मैंने उससे यही कहा—'जहाँ धर्म है, वहीं विजय है'॥ ७ ॥

यथा च युध्यमानस्त्वं न वै मुह्यसि पुत्रक।
ध्रुवं शस्त्रजिताँल्लोकान् प्राप्स्यस्यमरवत् प्रभो॥ ८ ॥

''बेटा! शक्तिशाली पुत्र! यदि तुम युद्ध करते हुए धर्मसे मोहित न होओगे तो निश्चय ही देवताओंके समान शस्त्रोंद्वारा जीते हुए लोकोंको प्राप्त कर लोगे' ॥ ८ ॥

इत्येवमब्रवं पूर्वं नैनं शोचामि वै प्रभो।
धृतराष्ट्रं तु शोचामि कृपणं हतबान्धवम् ॥ ९ ॥

'प्रभो! यह बात मैंने पहले ही कह दी थी; इसलिये मुझे इस दुर्योधनके लिये शोक नहीं हो रहा है। मैं तो इन दीन राजा धृतराष्ट्रके लिये शोकमग्न हो रही हूँ, जिनके सारे भाई-बन्धु मार डाले गये ॥ ९ ॥

अमर्षणं युधां श्रेष्ठं कृतास्त्रं युद्धदुर्मदम्।
शयानं वीरशयने पश्य माधव मे सुतम् ॥ १० ॥

'माधव! अमर्षशील, योद्धाओंमें श्रेष्ठ, अस्त्रविद्याके ज्ञाता, रणदुर्मद तथा वीरशय्यापर सोये हुए मेरे इस पुत्रको देखो तो सही ॥ १० ॥

योऽयं मूर्धाभिषिक्तानामग्रे याति परंतपः।
सोऽयं पांसुषु शेतेऽद्य पश्य कालस्य पर्ययम्॥ ११ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाला जो दुर्योधन मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आगे-आगे चलता था, वही आज यह धूलमें लोट रहा है। कालके इस उलट-फेरको तो देखो ॥ ११ ॥

ध्रुवं दुर्योधनो वीरो गतिं न सुलभां गतः।
तथा ह्यभिमुखः शेते शयने वीरसेविते ॥ १२ ॥

'निश्चय ही वीर दुर्योधन उस उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है, जो सबके लिये सुलभ नहीं है; क्योंकि यह वीरसेवित शय्यापर सामने मुहँ किये सो रहा है ॥ १२ ॥

यं पुरा पर्युपासीना रमयन्ति वरस्त्रियः।
तं वीरशयने सुप्तं रमयन्त्यशिवाः शिवाः ॥ १३ ॥

'पूर्वकालमें जिसके पास बैठकर सुन्दरी स्त्रियाँ उसका मनोरंजन करती थीं, वीरशय्यापर सोये हुए आज उसी वीरका ये अमङ्गलकारिणी गीदड़ियाँ मन-बहलाव करती हैं ॥

यं पुरा पर्युपासीना रमयन्ति महीक्षितः।
महीतलस्थं निहतं गृध्रास्तं पर्युपासते ॥ १४ ॥

'जिसके पास पहले राजा लोग बैठकर उसे आनन्द प्रदान करते थे, आज मरकर धरतीपर पड़े हुए उसी वीरके पास गीध बैठे हुए हैं ॥ १४ ॥

यं पुरा व्यजनै रम्यैरुपवीजन्ति योषितः।
तमद्य पक्षव्यजनैरुपवीजन्ति पक्षिणः ॥ १५ ॥

'पहले जिसके पास खड़ी होकर युवतियाँ सुन्दर पंखे झला करती थीं, आज उसीको पक्षीगण अपनी पाँखोंसे हवा करते हैं ॥ १५ ॥

एष शेते महाबाहुर्बलवान् सत्यविक्रमः।
सिंहेनेव द्विपः संख्ये भीमसेनेन पातितः ॥ १६ ॥

'यह महाबाहु सत्यपराक्रमी बलवान् वीर दुर्योधन भीमसेनके द्वारा गिराया जाकर युद्धस्थलमें सिंहके मारे हुए गजराजके समान सो रहा है ॥ १६ ॥

पश्य दुर्योधनं कृष्ण शयानं रुधिरोक्षितम्।
निहतं भीमसेनेन गदां सम्मृज्य भारतम् ॥ १७ ॥

'श्रीकृष्ण! भीमसेनकी चोट खाकर खूनसे लथपथ हो गदा लिये धरतीपर सोये हुए दुर्योधनको अपनी आँखसे देख लो ॥ १७ ॥

अक्षौहिणीर्महाबाहुर्दश चैकां च केशव।
आनयद् यः पुरा संख्ये सोऽनयान्निधनं गतः॥ १८ ॥

'केशव! जिस महाबाहु वीरने पहले ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंको जुटा लिया था, वही अपनी अनीतिके कारण युद्धमें मार डाला गया ॥ १८ ॥

एष दुर्योधनः शेते महेष्वासो महाबलः।
शार्दूल इव सिंहेन भीमसेनेन पातितः ॥ १९ ॥

'सिंहके मारे हुए दूसरे सिंहके समान भीमसेनके हाथों

मारा गया यह महाबली महाधनुर्धर दुर्योधन सो रहा है ॥ १९ ॥

विदुरं ह्यवमत्यैष पितरं चैव मन्दभाक् ।
बालो वृद्धावमानेन मन्दो मृत्युवशं गतः ॥ २० ॥

'यह मूर्ख और अभागा बालक विदुर तथा अपने पिताका अपमान करके बड़े-बूढ़ोंकी अवहेलनाके पापसे ही कालके गालमें चला गया है ॥ २० ॥

निःसपत्ना मही यस्य त्रयोदश समाः स्थिता ।
स शेते निहतो भूमौ पुत्रो मे पृथिवीपतिः ॥ २१ ॥

'यह सारी पृथ्वी तेरह वर्षोंतक निष्कण्टक भावसे जिसके अधिकारमें रही है, वही मेरा पुत्र पृथ्वीपति दुर्योधन आज मारा जाकर पृथ्वीपर पड़ा है ॥ २१ ॥

अपश्यं कृष्ण पृथिवीं धार्तराष्ट्रानुशासिताम् ।
पूर्णां हस्तिगवाश्वैश्च वार्ष्णेय न तु तच्चिरम् ॥ २२ ॥

'वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण ! मैंने दुर्योधनद्वारा शासित हुई इस पृथ्वीको हाथी, घोड़े और गौओंसे भरी-पूरी देखा था; किंतु वह राज्य चिरस्थायी न रह सका ॥ २२ ॥

तामेवाद्य महाबाहो पश्याम्यन्यानुशासिताम् ।
हीनां हस्तिगवाश्वेन किं नु जीवामि माधव ॥ २३ ॥

'महाबाहु माधव ! आज उसी पृथ्वीको मैं देखती हूँ कि वह दूसरेके शासनमें जाकर हाथी, घोड़े और गाय-बैलोंसे हीन हो गयी है; फिर मैं किस लिये जीवन धारण करूँ ? २३

इदं कष्टतरं पश्य पुत्रस्यापि वधान्मम ।
यदिमाः पर्युपासन्ते हताञ्शूरान् रणे स्त्रियः ॥ २४ ॥

'मेरे लिये पुत्रके वधसे भी अधिक कष्ट देनेवाली बात यह है कि ये स्त्रियाँ रणभूमिमें मारे गये अपने शूरवीर पतियोंके पास बैठी रो रही हैं । इनकी दयनीय दशा तो देखो ॥

प्रकीर्णकेशां सुश्रोणीं दुर्योधनशुभाङ्कगाम् ।
रुक्मवेदीनिभां पश्य कृष्ण लक्ष्मणमातरम् ॥ २५ ॥

'श्रीकृष्ण ! सुवर्णकी वेदीके समान तेजस्विनी तथा सुन्दर कटि-प्रदेशवाली उस लक्ष्मणकी माताको तो देखो, जो दुर्योधनके शुभ-अङ्कमें स्थित हो केश खोले रो रही है ॥२५॥

नूनमेषा पुरा बाला जीवमाने महाभुजे ।
भुजावाश्रित्य रमते सुभुजस्य मनस्विनी ॥ २६ ॥

'पहले जब राजा दुर्योधन जीवित था, तब निश्चय ही यह मनस्विनी बाला सुन्दर बाँहोंवाले अपने वीर पतिकी दोनों भुजाओंका आश्रय लेकर इसी तरह उसके साथ सानन्द क्रीड़ा करती रही होगी ॥ २६ ॥

कथं तु शतधा नेदं हृदयं मम दीर्यते ।
पश्यन्त्या निहतं पुत्रं पुत्रेण सहितं रणे ॥ २७ ॥

'रणभूमिमें वही मेरा पुत्र अपने पुत्रके साथ ही मार डाला गया है, इसे इस अवस्थामें देखकर मेरे इस हृदयके सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ? ॥ २७ ॥

पुत्रं रुधिरसंसिक्तमुपजिघ्रत्यनिन्दिता ।
दुर्योधनं तु वामोरूः पाणिना परिमार्जती ॥ २८ ॥

'सुन्दर जाँघोंवाली मेरी सती साध्वी पुत्रवधू कभी खूनसे भीगे हुए अपने पुत्र लक्ष्मणका मुँह सूँघती है तो कभी पति दुर्योधनका शरीर अपने हाथसे पोंछती है ॥ २८ ॥

किं नु शोचति भर्तारं पुत्रं चैषा मनस्विनी ।
तथा ह्यवस्थिता भाति पुत्रं चाप्यभिवीक्ष्य सा ॥ २९ ॥

स्वशिरः पञ्चशाखाभ्यामभिहत्यायतेक्षणा ।
पतत्युरसि वीरस्य कुरुराजस्य माधव ॥ ३० ॥

'पता नहीं, यह मनस्विनी बहू पुत्रके लिये शोक करती है या पतिके लिये ? कुछ ऐसी ही अवस्थामें वह जान पड़ती है । माधव ! वह देखो, वह विशाललोचना वधू पुत्रकी ओर देखकर दोनों हाथोंसे सिर पीटती हुई अपने वीर पति कुरुराजकी छातीपर गिर पड़ी है ॥ २९-३० ॥

पुण्डरीकनिभा भाति पुण्डरीकान्तरप्रभा ।
मुखं विमृज्य पुत्रस्य भर्तुश्चैव तपस्विनी ॥ ३१ ॥

'कमल-पुष्पके भीतरी भागकी-सी मनोहर कान्तिवाली मेरी तपस्विनी पुत्रवधू जो प्रफुल्ल कमलके समान सुशोभित हो रही है, कभी अपने पुत्रका मुँह पोंछती है तो कभी अपने पतिका ॥ ३१ ॥

यदि सत्यागमाः सन्ति यदि वै श्रुतयस्तथा ।
ध्रुवं लोकानवाप्तोऽयं नृपो बाहुबलार्जितान् ॥ ३२ ॥

'श्रीकृष्ण ! यदि वेद-शास्त्र सत्य हैं तो मेरा पुत्र यह राजा दुर्योधन निश्चय ही अपने बाहुबलसे प्राप्त हुए पुण्यमय लोकोंमें गया है' ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि दुर्योधनदर्शने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें दुर्योधनका दर्शनविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

अपने अन्य पुत्रों तथा दुःशासनको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप

गान्धार्युवाच

पश्य माधव पुत्रान्मे शतसंख्याञ्जितक्लमान् ।
गदया भीमसेनेन भूयिष्ठं निहतान् रणे ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—माधव ! जो परिश्रमको जीत चुके थे, उन मेरे सौ पुत्रोंको देखो, जिन्हें रणभूमिमें प्रायः भीमसेनने अपनी गदासे मार डाला है ॥ १ ॥

इदं दुःखतरं मेऽद्य यदिमा मुक्तमूर्धजाः ।
हतपुत्रा रणे बालाः परिधावन्ति मे स्नुषाः ॥ २ ॥

सबसे अधिक दुःख मुझे आज यह देखकर हो रहा है कि ये मेरी बालवधुएँ, जिनके पुत्र भी मारे जा चुके हैं, रणभूमिमें केश खोले चारों ओर अपने स्वजनोंकी खोजमें दौड़ रही हैं ॥ २ ॥

प्रासादतलचारिण्यश्चरणैर्भूषणान्वितैः ।
आपन्ना यत् स्पृशन्तीमां रुधिरार्द्रां वसुन्धराम् ॥ ३ ॥

ये महलकी अट्टालिकाओंमें आभूषणभूषित चरणोंद्वारा विचरण करनेवाली थीं; परंतु आज विपत्तिकी मारी हुई ये इस खूनसे भीगी हुई वसुधाका स्पर्श कर रही हैं ॥ ३ ॥

कृच्छ्रादुत्सारयन्ति स्म गृध्रगोमायुवायसान् ।
दुःखेनार्ता विघूर्णन्त्यो मत्ता इव चरन्त्युत ॥ ४ ॥

ये दुःखसे आतुर हो पगली स्त्रियोंके समान झूमती हुई सब ओर विचरती हैं तथा बड़ी कठिनाईसे गीधों, गीदड़ों और कौओंको लाशोंके पाससे दूर हटा रही हैं ॥ ४ ॥

एषान्या त्वनवद्याङ्गी करसम्मितमध्यमा ।
घोरमायोधनं दृष्ट्वा निपतत्यतिदुःखिता ॥ ५ ॥

यह पतली कमरवाली सर्वाङ्गसुन्दरी दूसरी वधू युद्धस्थलका भयानक दृश्य देखकर अत्यन्त दुखी हो पृथ्वीपर गिर पड़ती है ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा मे पार्थिवसुतामेतां लक्ष्मणमातरम् ।
राजपुत्रीं महाबाहो मनो न ह्युपशाम्यति ॥ ६ ॥

महाबाहो ! यह लक्ष्मणकी माता एक भूमिपालकी बेटी है, इस राजकुमारीकी दशा देखकर मेरा मन किसी तरह शान्त नहीं होता है ॥ ६ ॥

भ्रातॄंश्चान्याः पितॄंश्चान्याः पुत्रांश्च निहतान् भुवि ।
दृष्ट्वा परिपतन्त्येताः प्रगृह्य सुमहाभुजान् ॥ ७ ॥

कुछ स्त्रियाँ रणभूमिमें मारे गये अपने भाइयोंको, कुछ पिताओंको और कुछ पुत्रोंको देखकर उन महाबाहु वीरोंको पकड़ लेती और वहीं गिर पड़ती हैं ॥ ७ ॥

मध्यमानां तु नारीणां वृद्धानां चापराजित ।
आक्रन्दं हतबन्धूनां दारुणे वैशसे शृणु ॥ ८ ॥

अपराजित वीर ! इस दारुण संग्राममें जिनके बन्धु-बान्धव मारे गये हैं, उन अधेड़ और बूढ़ी स्त्रियोंका यह करुणाजनक क्रन्दन सुनो ॥ ८ ॥

रथनीडानि देहांश्च हतानां गजवाजिनाम् ।
आश्रित्य श्रममोहार्ताः स्थिताः पश्य महाभुज ॥ ९ ॥

महाबाहो ! देखो, ये स्त्रियाँ परिश्रम और मोहसे पीड़ित हो टूटे हुए रथोंकी बैठकों तथा मारे गये हाथी-घोड़ोंकी लाशोंका सहारा लेकर खड़ी हैं ॥ ९ ॥

अन्यां चापहृतं कायाच्चारुकुण्डलमुन्नसम् ।
स्वस्य बन्धोः शिरः कृष्ण गृहीत्वा पश्य तिष्ठतीम् ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, वह दूसरी स्त्री किसी आत्मीय जनके मनोहर कुण्डलोंसे सुशोभित और ऊँची नासिकावाले कटे हुए मस्तकको लेकर खड़ी है ॥ १० ॥

पूर्वजातिकृतं पापं मन्ये नाल्पमिवानघ ।
एताभिर्निरवद्याभिर्मया चैवाल्पमेधया ॥ ११ ॥
यदिदं धर्मराजेन पातितं नो जनार्दन ।
न हि नाशोऽस्ति वार्ष्णेय कर्मणोः शुभपापयोः ॥ १२ ॥

अनघ ! मैं समझती हूँ कि इन अनिन्द्य सुन्दरी अबलाओं-ने तथा मन्द बुद्धिवाली मैंने भी पूर्वजन्मोंमें कोई बड़ा भारी पाप किया है, जिसके फलस्वरूप धर्मराजने हमलोगोंको बड़ी भारी विपत्तिमें डाल दिया है । जनार्दन ! वृष्णिनन्दन ! जान पड़ता है कि किये हुए पुण्य और पापकर्मोंका उनके फलका उपभोग किये बिना नाश नहीं होता है ॥ ११-१२ ॥

प्रत्यग्रवयसः पश्य दर्शनीयकुचाननाः ।
कुलेषु जाता ह्रीमत्यः कृष्णपक्ष्माक्षिमूर्धजाः ॥ १३ ॥
हंसगद्गदभाषिण्यो दुःखशोकप्रमोहिताः ।
सारस्य इव वाशन्त्यः पतिताः पश्य माधव ॥ १४ ॥

माधव ! देखो, इन महिलाओंकी नयी अवस्था है । इनके वक्षःस्थल और मुख दर्शनीय हैं । इनकी आँखोंकी बरौनियाँ और सिरके केश काले हैं । ये सब-की-सब कुलीन और सलज्ज हैं । ये हंसके समान गद्गद स्वरमें बोलती हैं; परंतु आज दुःख और शोकसे मोहित हो चहचहाती सारसियोंके समान रोती-बिलखती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी हैं ॥ १३-१४ ॥

फुल्लपद्मप्रकाशानि पुण्डरीकाक्ष योषिताम् ।
अनवद्यानि वक्त्राणि तापयत्येष रश्मिवान् ॥ १५ ॥

कमलनयन ! खिले हुए कमलके समान प्रकाशित होनेवाले युवतियोंके इन सुन्दर मुखोंको ये सूर्यदेव संतप्त कर रहे हैं ॥ १५ ॥

ईर्षूणां मम पुत्राणां वासुदेवावरोधनम् ।
मत्तमातङ्गदर्पाणां पश्यन्त्यद्य पृथग्जनाः ॥ १६ ॥

वासुदेव ! मतवाले हाथीके समान घमंडमें चूर रहनेवाले मेरे ईर्ष्यालु पुत्रोंकी इन रानियोंको आज साधारण लोग देख रहे हैं ॥ १६ ॥

शतचन्द्राणि चर्माणि ध्वजांश्चादित्यवर्चसः ।
रौक्माणि चैव वर्माणि निष्कानपि च काञ्चनान् ॥ १७ ॥
शीर्षत्राणानि चैतानि पुत्राणां मे महीतले ।
पश्य दीप्तानि गोविन्द पावकान् सुहुतानिव ॥ १८ ॥

गोविन्द ! देखो, मेरे पुत्रोंकी ये सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे सुशोभित ढालें, सूर्यके समान तेजस्विनी ध्वजाएँ, सुवर्णमय कवच, सोनेके निष्क तथा शिरस्त्राण घीकी उत्तम आहुति पाकर प्रज्वलित हुई अग्नियोंके समान पृथ्वीपर देदीप्यमान हो रहे हैं ॥ १७-१८ ॥

एष दुःशासनः शेते शूरेणामित्रघातिना ।
पीतशोणितसर्वाङ्गो युधि भीमेन पातितः ॥ १९ ॥

शत्रुघाती शूरवीर भीमसेनने युद्धमें जिसे मार गिराया तथा जिसके सारे अङ्गोंका रक्त पी लिया, वही यह दुःशासन यहाँ सो रहा है ॥ १९ ॥

गदया भीमसेनेन पश्य माधव मे सुतम् ।
द्यूतक्लेशाननुस्मृत्य द्रौपदीनोदितेन च ॥ २० ॥

माधव ! देखो, द्यूतक्रीडाके समय पाये हुए क्लेशोंको स्मरण करके द्रौपदीसे प्रेरित हुए भीमसेनने मेरे इस पुत्रको गदासे मार डाला है ॥ २० ॥

उक्ता ह्यनेन पाञ्चाली सभायां द्यूतनिर्जिता ।

प्रियं चिकीर्षता भ्रातुः कर्णस्य च जनार्दन ॥ २१ ॥
सहैव सहदेवेन नकुलेनार्जुनेन च ।
दासीभूतासि पाञ्चालि क्षिप्रं प्रविश नो गृहान्॥ २२ ॥

जनार्दन ! इसने अपने भाई और कर्णका प्रिय करनेकी इच्छासे सभामें जूएसे जीती गयी द्रौपदीके प्रति कहा था कि 'पाञ्चालि ! तू नकुल-सहदेव तथा अर्जुनके साथ ही हमारी दासी हो गयी; अतः शीघ्र ही हमारे घरोंमें प्रवेश कर' २१-२२

ततोऽहमब्रवं कृष्ण तदा दुर्योधनं नृपम् ।
मृत्युपाशपरिक्षिप्तं शकुनिं पुत्र वर्जय ॥ २३ ॥
निबोधैनं सुदुर्बुद्धिं मातुलं कलहप्रियम् ।
क्षिप्रमेनं परित्यज्य पुत्र शाम्यस्व पाण्डवैः ॥ २४ ॥
न बुद्ध्यसे त्वं दुर्बुद्धे भीमसेनममर्षणम् ।
वाङ्नाराचैस्तुदंस्तीक्ष्णैरुल्काभिरिव कुञ्जरम्॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण ! उस समय मैं राजा दुर्योधनसे बोली—'बेटा ! शकुनि मौतके फँदेमें फँसा हुआ है । तुम इसका साथ छोड़ दो । पुत्र ! तुम अपने इस खोटी बुद्धिवाले मामाको कलहप्रिय समझो और शीघ्र ही इसका परित्याग करके पाण्डवोंके साथ संधि कर लो । दुर्बुद्धे ! तुम नहीं जानते कि भीमसेन कितने अमर्षशील हैं । तभी जलती लकड़ीसे हाथीको मारनेके समान तुम अपने तीखे वाग्बाणोंसे उन्हें पीड़ा दे रहे हो' ॥ २३—२५ ॥

तानेवं रहसि क्रुद्धो वाक्शल्यानवधारयन् ।
उत्ससर्ज विषं तेषु सर्पो गोवृषभेष्विव ॥ २६ ॥

इस प्रकार एकान्तमें मैंने उन सबको डाँटा था । श्रीकृष्ण ! उन्हीं वाग्बाणोंको याद करके क्रोधी भीमसेनने मेरे पुत्रोंपर उसी प्रकार क्रोधरूपी विष छोड़ा है, जैसे सर्प गाय-बैलोंको डँसकर उनमें अपने विषका संचार कर देता है॥२६॥

एष दुःशासनः शेते विक्षिप्य विपुलौ भुजौ ।
निहतो भीमसेनेन सिंहेनेव महागजः ॥ २७ ॥

सिंहके मारे हुए विशाल हाथीके समान भीमसेनका मारा हुआ यह दुःशासन दोनों विशाल हाथ फैलाये रणभूमिमें पड़ा हुआ है ॥ २७ ॥

अत्यर्थमकरोद् रौद्रं भीमसेनोऽत्यमर्षणः ।
दुःशासनस्य यत् क्रुद्धोऽपिबच्छोणितमाहवे ॥ २८ ॥

अत्यन्त अमर्षमें भरे हुए भीमसेनने युद्धस्थलमें क्रुद्ध होकर जो दुःशासनका रक्त पी लिया, यह बड़ा भयानक कर्म किया है ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीवाक्यविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

विकर्ण, दुर्मुख, चित्रसेन, विविंशति तथा दुःसहको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप

गान्धार्युवाच

एष माधव पुत्रो मे विकर्णः प्राज्ञसम्मतः ।
भूमौ विनिहतः शेते भीमेन शतधा कृतः ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—माधव ! यह मेरा पुत्र विकर्ण, जो विद्वानोंद्वारा सम्मानित होता था, भूमिपर मरा पड़ा है । भीमसेनने इसके भी सौ-सौ टुकड़े कर डाले हैं ॥ १ ॥

गजमध्ये हतः शेते विकर्णो मधुसूदन ।
नीलमेघपरिक्षिप्तः शरदीव निशाकरः ॥ २ ॥

मधुसूदन ! जैसे शरत्कालमें काले मेघोंकी घटासे घिरा हुआ चन्द्रमा शोभा पा रहा हो, उसी प्रकार भीमद्वारा मारा गया विकर्ण हाथियोंकी सेनाके बीचमें सो रहा है ॥२॥

अस्य चापग्रहेणैव पाणिः कृतकिणो महान् ।
कथञ्चिच्छिद्यते गृध्रैरत्तुकामैस्तलत्रवान् ॥ ३ ॥

बराबर धनुष लिये रहनेसे इसकी विशाल हथेलीमें घट्ठा पड़ गया है । इसके हाथमें इस समय भी दस्ताना बँधा हुआ है; इसलिये इसे खानेकी इच्छावाले गीध बड़ी कठिनाईसे किसी-किसी तरह काट पाते हैं ॥ ३ ॥

अस्य भार्याऽऽमिषप्रेप्सून् गृध्रकाकांस्तपस्विनी ।
वारयत्यनिशं बाला न च शक्नोति माधव ॥ ४ ॥

माधव ! उसकी तपस्विनी पत्नी जो अभी बालिका है, मांसलोलुप गीधों और कौओंको हटानेकी निरन्तर चेष्टा करती है; परंतु सफल नहीं हो पाती है ॥ ४ ॥

युवा वृन्दारकः शूरो विकर्णः पुरुषर्षभ ।
सुखोषितः सुखार्हश्च शेते पांसुषु माधव ॥ ५ ॥

पुरुषप्रवर माधव ! विकर्ण नवयुवक, देवताके समान कान्तिमान्, शूरवीर, सुखमें पला हुआ तथा सुख भोगनेके ही योग्य था; परंतु आज धूलमें लोट रहा है ॥ ५ ॥

कर्णिनालीकनाराचैर्भिन्नमर्माणमाहवे ।
अद्यापि न जहात्येनं लक्ष्मीर्भरतसत्तमम् ॥ ६ ॥

युद्धमें कर्णी, नालीक और नाराचोंके प्रहारसे इसके मर्मस्थल विदीर्ण हो गये हैं तो भी इस भरतभूषण वीरको अभीतक लक्ष्मी (अङ्गकान्ति) छोड़ नहीं रही है ॥ ६ ॥

एष संग्रामशूरेण प्रतिज्ञां पालयिष्यता ।
दुर्मुखोऽभिमुखः शेते हतोऽरिगणहा रणे ॥ ७ ॥

जो शत्रुसमूहोंका संहार करनेवाला था, वह दुर्मुख प्रतिज्ञा पालन करनेवाले संग्राम-शूर भीमसेनके हाथों मारा जाकर समरमें सम्मुख सो रहा है ॥ ७ ॥

तस्यैतद् वदनं कृष्ण श्वापदैरर्धभक्षितम् ।
विभात्यभ्यधिकं तात सप्तम्यामिव चन्द्रमाः ॥ ८ ॥

तात श्रीकृष्ण ! इसका यह मुख हिंसक जन्तुओंद्वारा आधा खा लिया गया है, इसलिये सप्तमीके चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित हो रहा है ॥ ८ ॥

शूरस्य हि रणे कृष्ण पश्याननमथेदृशम् ।
स कथं निहतोऽमित्रैः पांसून् ग्रसति मे सुतः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, मेरे इस रणशूर पुत्रका मुख कैसा तेजस्वी है ? पता नहीं, मेरा यह वीर पुत्र किस तरह शत्रुओंके हाथसे मारा जाकर धूल फाँक रहा है ? ॥ ९ ॥

यस्याहवमुखे सौम्य स्थाता नैवोपपद्यते ।
स कथं दुर्मुखोऽमित्रैर्हतो विबुधलोकजित् ॥ १० ॥

सौम्य ! युद्धके मुहानेपर जिसके सामने कोई ठहर नहीं पाता था, उस देवलोकविजयी दुर्मुखको शत्रुओंने कैसे मार डाला ? ॥ १० ॥

चित्रसेनं हतं भूमौ शयानं मधुसूदन ।
धार्तराष्ट्रमिमं पश्य प्रतिमानं धनुष्मताम् ॥ ११ ॥

मधुसूदन ! देखो, जो धनुर्धरोंका आदर्श था, वही यह धृतराष्ट्रका पुत्र चित्रसेन मारा जाकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ है॥

तं चित्रमाल्याभरणं युवत्यः शोककर्शिताः ।
क्रव्यादसंघैः सहिता रुदत्यः पर्युपासते ॥ १२ ॥

विचित्र माला और आभूषण धारण करनेवाले उस चित्रसेनको घेरकर शोकसे कातर हो रोती हुई युवतियाँ हिंसक जन्तुओंके साथ उसके पास बैठी हैं ॥ १२ ॥

स्त्रीणां रुदितनिर्घोषः श्वापदानां च गर्जितम् ।
चित्ररूपमिदं कृष्ण विचित्रं प्रतिभाति मे ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण ! एक ओर स्त्रियोंके रोनेकी आवाज है तो दूसरी ओर हिंसक जन्तुओंकी गर्जना हो रही है । यह अद्भुत दृश्य मुझे विचित्र प्रतीत होता है ॥ १३ ॥

युवा वृन्दारको नित्यं प्रवरस्त्रीनिषेवितः ।
विविंशतिरसौ शेते ध्वस्तः पांसुषु माधव ॥ १४ ॥

माधव ! देखो, वह देवतुल्य नवयुवक विविंशति, जिसकी सुन्दरी स्त्रियाँ सदा सेवा किया करती थीं, आज विध्वस्त होकर धूलमें पड़ा है ॥ १४ ॥

शरसंकृत्तवर्माणं वीरं विशसने हतम् ।
परिवार्यासते गृध्राः पश्य कृष्ण विविंशतिम् ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, बाणोंसे इसका कवच छिन्न-भिन्न हो गया है । युद्धमें मारे गये इस वीर विविंशतिको गीध चारों ओरसे घेरकर बैठे हैं ॥ १५ ॥

प्रविश्य समरे शूरः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
स वीरशयने शेते परः सत्पुरुषोचिते ॥ १६ ॥

जो शूरवीर समराङ्गणमें पाण्डवोंकी सेनाके भीतर घुसकर लोहा लेता था, वही आज सत्पुरुषोचित वीरशय्यापर शयन कर रहा है ॥ १६ ॥

स्मितोपपन्नं सुनसं सुभ्रु ताराधिपोपमम् ।
अतीव शुभ्रं वदनं कृष्ण पश्य विविंशतेः ॥ १७ ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, विविंशतिका मुख अत्यन्त उज्ज्वल है, इसके अधरोंपर मुस्कराहट खेल रही है, नासिका मनोहर और भौंहें सुन्दर हैं । यह मुख चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा है ॥ १७ ॥

एनं हि पर्युपासन्ते बहुधा वरयोषितः ।
क्रीडन्तमिव गन्धर्वं देवकन्याः सहस्रशः ॥ १८ ॥

जैसे क्रीडा करते हुए गन्धर्वके साथ सहस्रों देवकन्याएँ होती हैं, उसी प्रकार इस विविंशतिकी सेवामें बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ रहा करती थीं ॥ १८ ॥

हन्तारं परसैन्यानां शूरं समितिशोभनम् ।
निबर्हणममित्राणां दुःसहं विषहेत कः ॥ १९ ॥

शत्रुकी सेनाओंका संहार करनेमें समर्थ तथा युद्धमें शोभा पानेवाले शूरवीर शत्रुसूदन दुःसहका वेग कौन सह सकता था ? ॥ १९ ॥

दुःसहस्यैतदाभाति शरीरं संवृतं शरैः ।
गिरिरात्मगतैः फुल्लैः कर्णिकारैरिवाचितः ॥ २० ॥

उसी दुःसहका यह शरीर बाणोंसे खचाखच भरा हुआ है, जो अपने ऊपर खिले हुए कनेरके फूलोंसे व्याप्त पर्वतके समान सुशोभित होता है ॥ २० ॥

शातकौम्या स्रजा भाति कवचेन च भास्वता ।
अग्निनेव गिरिः श्वेतो गतासुरपि दुःसहः ॥ २१ ॥

यद्यपि दुःसहके प्राण चले गये हैं तो भी वह सोनेकी माला और तेजस्वी कवचसे सुशोभित हो अग्नियुक्त श्वेत पर्वतके समान जान पड़ता है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीवाक्यविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

गान्धारीद्वारा श्रीकृष्णके प्रति उत्तरा और विराटकुलकी स्त्रियोंके शोक एवं विलापका वर्णन

गान्धार्युवाच

अध्यर्धगुणमाहुर्यं बले शौर्ये च केशव ।
पित्रा त्वया च दाशार्ह दृप्तं सिंहमिवोत्कटम् ॥ १ ॥
यो बिभेद चमूमेको मम पुत्रस्य दुर्भिदाम् ।
स भूत्वा मृत्युरन्येषां स्वयं मृत्युवशं गतः ॥ २ ॥

गान्धारी बोलीं—दशार्हनन्दन केशव ! जिसे बल और शौर्यमें अपने पितासे तथा तुमसे भी डेढ़ गुना बताया जाता था, जो प्रचण्ड सिंहके समान अभिमानमें भरा रहता था, जिसने अकेले ही मेरे पुत्रके दुर्भेद्य व्यूहको तोड़ डाला था, वही अभिमन्यु दूसरोंकी मृत्यु बनकर स्वयं भी मृत्युके अधीन हो गया ॥ १-२ ॥

तस्योपलक्षये कृष्ण कार्ष्णेरमिततेजसः ।
अभिमन्योर्हतस्यापि प्रभा नैवोपशाम्यति ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण ! मैं देख रही हूँ कि मारे जानेपर भी अमित

तेजस्वी अर्जुनपुत्र अभिमन्युकी कान्ति अभी बुझ नहीं पा रही है ॥ ३ ॥

एषा विराटदुहिता स्नुषा गाण्डीवधन्वनः ।
आर्ता बालं पतिं वीरं दृष्ट्वा शोचत्यनिन्दिता ॥ ४ ॥

यह राजा विराटकी पुत्री और गाण्डीवधारी अर्जुनकी पुत्रवधू सती साध्वी उत्तरा अपने बालक पति वीर अभिमन्युको मरा देख आर्त होकर शोक प्रकट कर रही है ॥ ४ ॥

तमेषा हि समागम्य भार्या भर्तारमन्तिके ।
विराटदुहिता कृष्ण पाणिना परिमार्जति ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण ! यह विराटकी पुत्री और अभिमन्युकी पत्नी उत्तरा अपने पतिके निकट जा उसके शरीरपर हाथ फेर रही है॥

तस्य वक्त्रमुपाघ्राय सौभद्रस्य मनस्विनी ।
विबुद्धकमलाकारं कम्बुवृत्तशिरोधरम् ॥ ६ ॥
काम्यरूपवती चैषा परिष्वजति भामिनी ।
लज्जमाना पुरा चैनं माध्वीकमदमूर्च्छिता ॥ ७ ॥

सुभद्राकुमारका मुख प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पाता है। उसकी ग्रीवा शङ्खके समान और गोल है। कमनीय रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित माननीय एवं मनस्विनी उत्तरा पतिके मुखारविन्दको सूँघकर उसे गलेसे लगा रही है। पहले भी यह इसी प्रकार मधुके मदसे अचेत हो सलज्ज भावसे उसका आलिङ्गन करती रही होगी ॥ ६-७ ॥

तस्य क्षतजसंदिग्धं जातरूपपरिष्कृतम् ।
विमुच्य कवचं कृष्ण शरीरमभिवीक्षते ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण ! अभिमन्युका सुवर्ण-भूषित कवच खूनसे रँग गया है। बालिका उत्तरा उस कवचको खोलकर पतिके शरीरको देख रही है ॥ ८ ॥

अवेक्षमाणा तं बाला कृष्ण त्वामभिभाषते ।
अयं ते पुण्डरीकाक्ष सदृशाक्षो निपातितः ॥ ९ ॥

उसे देखती हुई वह बाला तुमसे पुकारकर कहती है, 'कमलनयन ! आपके भानजेके नेत्र भी आपके ही समान थे। ये रणभूमिमें मार गिराये गये हैं ॥ ९ ॥

बले वीर्ये च सदृशस्तेजसा चैव तेऽनघ ।
रूपेण च तथात्यर्थं शेते भुवि निपातितः ॥ १० ॥

'अनघ ! जो बल, वीर्य, तेज और रूपमें सर्वथा आपके समान थे, वे ही सुभद्राकुमार शत्रुओंद्वारा मारे जाकर पृथ्वीपर सो रहे हैं' ॥ १० ॥

अत्यन्तं सुकुमारस्य राङ्कवाजिनशायिनः ।
कच्चिदद्य शरीरं ते भूमौ न परितप्यते ॥ ११ ॥

(श्रीकृष्ण ! अब उत्तरा अपने पतिको सम्बोधित करके कहती है) 'प्रियतम ! आपका शरीर तो अत्यन्त सुकुमार है। आप रङ्कुमृगके चर्मसे बने हुए सुकोमल बिछौनेपर सोया करते थे। क्या आज इस तरह पृथ्वीपर पड़े रहनेसे आपके शरीरको कष्ट नहीं होता है ? ॥ ११ ॥

मातङ्गभुजवर्ष्माणौ ज्याक्षेपकठिनत्वचौ ।
काञ्चनाङ्गदिनौ शेते निक्षिप्य विपुलौ भुजौ ॥ १२ ॥

'जो हाथीकी सूँड़के समान बड़ी हैं, निरन्तर प्रत्यञ्चा खींचनेके कारण रगड़से जिनकी त्वचा कठोर हो गयी है तथा जो सोनेके बाजूबन्द धारण करते हैं, उन विशाल भुजाओंको फैलाकर आप सो रहे हैं ॥ १२ ॥

व्यायम्य बहुधा नूनं सुखसुप्तः श्रमादिव ।
एवं विलपतीमार्तां न हि मामभिभाषसे ॥ १३ ॥

'निश्चय ही बहुत परिश्रम करके मानो थक जानेके कारण आप सुखकी नींद ले रहे हों। मैं इस तरह आर्त होकर विलाप करती हूँ, किंतु आप मुझसे बोलतेतक नहीं हैं॥

न स्मराम्यपराधं ते किं मां न प्रतिभाषसे ।
ननु मां त्वं पुरा दूरादभिवीक्ष्याभिभाषसे ॥ १४ ॥

'मैंने कोई अपराध किया हो, ऐसा तो मुझे स्मरण नहीं है, फिर क्या कारण है कि आप मुझसे नहीं बोलते हैं। पहले तो आप मुझे दूरसे भी देख लेनेपर बोले बिना नहीं रहते थे॥

आर्यामार्य सुभद्रां त्वमिमांश्च त्रिदशोपमान् ।
पितॄन् मां चैव दुःखार्तां विहाय क्व गमिष्यसि ॥ १५ ॥

'आर्य ! आप माता सुभद्राको, इन देवताओंके समान ताऊ, पिता और चाचाओंको तथा मुझ दुःखातुरा पत्नीको छोड़कर कहाँ जायँगे ?' ॥ १५ ॥

तस्य शोणितदिग्धान् वै केशानुद्यम्य पाणिना ।
उत्सङ्गे वक्त्रमाधाय जीवन्तमिव पृच्छति ॥ १६ ॥

जनार्दन ! देखो, अभिमन्युके सिरको गोदीमें रखकर उत्तरा उसके खूनसे सने हुए केशोंको हाथसे उठा-उठाकर सुलझाती है और मानो वह जी रहा हो, इस प्रकार उससे पूछती है ॥ १६ ॥

स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ।
कथं त्वां रणमध्यस्थं जघ्नुरेते महारथाः ॥ १७ ॥

'प्राणनाथ ! आप वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके भानजे और गाण्डीवधारी अर्जुनके पुत्र थे। रणभूमिके मध्यभागमें खड़े हुए आपको इन महारथियोंने कैसे मार डाला ?॥ १७ ॥

धिगस्तु क्रूरकर्तॄंस्तान् कृपकर्णजयद्रथान् ।
द्रोणद्रौणायनी चोभौ यैरहं विधवा कृता ॥ १८ ॥

'उन क्रूरकर्मा कृपाचार्य, कर्ण और जयद्रथको धिक्कार है, द्रोणाचार्य और उनके पुत्रको भी धिक्कार है ! जिन्होंने मुझे इसी उम्रमें विधवा बना दिया ॥ १८ ॥

रथर्षभाणां सर्वेषां कथमासीत् तदा मनः ।
बालं त्वां परिवार्यैकं मम दुःखाय जघ्नुषाम् ॥ १९ ॥

'आप बालक थे और अकेले युद्ध कर रहे थे तो भी मुझे दुःख देनेके लिये जिन लोगोंने मिलकर आपको मारा था, उन समस्त श्रेष्ठ महारथियोंके मनकी उस समय क्या दशा हुई थी?॥ १९ ॥

कथं नु पाण्डवानां च पञ्चालानां तु पश्यताम् ।
त्वं वीर निधनं प्राप्तो नाथवान् सन्ननाथवत् ॥ २० ॥

'वीर ! आप पाण्डवों और पाञ्चालोंके देखते-देखते सनाथ होते हुए भी अनाथकी भाँति कैसे मारे गये ?॥ २० ॥

दृष्ट्वा बहुभिराक्रन्दे निहतं त्वां पिता तव।
वीरः पुरुषशार्दूलः कथं जीवति पाण्डवः ॥ २१ ॥

'आपको युद्धस्थलमें बहुत-से महारथियोंद्वारा मारा गया देख आपके पिता पुरुषसिंह वीर पाण्डव अर्जुन कैसे जी रहे हैं ? ॥ २१ ॥

न राज्यलाभो विपुलः शत्रूणां च पराभवः।
प्रीतिं धास्यति पार्थानां त्वामृते पुष्करेक्षण ॥ २२ ॥

'कमलनयन ! प्राणेश्वर ! पाण्डवोंको जो यह विशाल राज्य मिल गया है, उन्होंने शत्रुओंको जो पराजित कर दिया है, यह सब कुछ आपके बिना उन्हें प्रसन्न नहीं कर सकेगा ॥

तव शस्त्रजिताँल्लोकान् धर्मेण च दमेन च।
क्षिप्रमन्वागमिष्यामि तत्र मां प्रतिपालय ॥ २३ ॥

'आर्यपुत्र ! आपके शस्त्रोंद्वारा जीते हुए पुण्यलोकोंमें मैं भी धर्म और इन्द्रिय-संयमके बलसे शीघ्र ही आऊँगी। आप वहाँ मेरी राह देखिये ॥ २३ ॥

दुर्मरं पुनरप्राप्ते काले भवति केनचित्।
यदहं त्वां रणे दृष्ट्वा हतं जीवामि दुर्भगा ॥ २४ ॥

'जान पड़ता है कि मृत्युकाल आये बिना किसीका भी मरना अत्यन्त कठिन है, तभी तो मैं अभागिनी आपको युद्धमें मारा गया देखकर भी अबतक जी रही हूँ ॥ २४ ॥

कामिदानीं नरव्याघ्र श्लक्ष्णया स्मितया गिरा।
पितृलोके समेत्यान्यां मामिवामन्त्रयिष्यसि ॥ २५ ॥

'नरश्रेष्ठ ! आप पितृलोकमें जाकर इस समय मेरी ही तरह दूसरी किस स्त्रीको मन्द मुस्कानके साथ मीठी वाणीद्वारा बुलायेंगे ? ॥ २५ ॥

नूनमप्सरसां स्वर्गे मनांसि प्रमथिष्यसि।
परमेण च रूपेण गिरा च स्मितपूर्वया ॥ २६ ॥

'निश्चय ही स्वर्गमें जाकर आप अपने सुन्दर रूप और मन्द मुस्कानयुक्त मधुर वाणीके द्वारा वहाँकी अप्सराओंके मनको मथ डालेंगे ॥ २६ ॥

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानप्सरोभिः समेयिवान्।
सौभद्र विहरन् काले स्मरेथाः सुकृतानि मे ॥ २७ ॥

'सुभद्रानन्दन ! आप पुण्यात्माओंके लोकोंमें जाकर अप्सराओंके साथ मिलकर विहार करते समय मेरे शुभ कर्मोंका भी स्मरण कीजियेगा ॥ २७ ॥

एतावानिह संवासो विहितस्ते मया सह।
षण्मासान् सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः ॥ २८ ॥

'वीर ! इस लोकमें तो मेरे साथ आपका कुल छः महीनोंतक ही सहवास रहा है। सातवें महीनेमें ही आप वीरगतिको प्राप्त हो गये' ॥ २८ ॥

इत्युक्तवचनामेतामपकर्षन्ति दुःखिताम्।
उत्तरां मोघसंकल्पां मत्स्यराजकुलस्त्रियः ॥ २९ ॥

इस तरहकी बातें कहकर दुःखमें डूबी हुई इस उत्तराको जिसका सारा संकल्प मिट्टीमें मिल गया है, मत्स्यराज विराटके कुलकी स्त्रियाँ खींचकर दूर ले जा रही हैं ॥ २९ ॥

उत्तरामपकृष्यैनामार्तामार्ततराः स्वयम्।
विराटं निहतं दृष्ट्वा क्रोशन्ति विलपन्ति च ॥ ३० ॥

शोकसे आतुर हुई उत्तराको खींचकर अत्यन्त आर्त हुई वे स्त्रियाँ राजा विराटको मारा गया देख स्वयं भी चीखने और विलाप करने लगी हैं ॥ ३० ॥

द्रोणास्त्रशरसंकृत्तं शयानं रुधिरोक्षितम्।
विराटं वितुदन्त्येते गृध्रगोमायुवायसाः ॥ ३१ ॥

द्रोणाचार्यके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो खूनसे लथपथ होकर रणभूमिमें पड़े हुए राजा विराटको ये गीध, गीदड़ और कौए नोच रहे हैं ॥ ३१ ॥

वितुद्यमानं विहगैर्विराटमसितेक्षणाः।
न शक्नुवन्ति विहगान् निवारयितुमातुराः ॥ ३२ ॥

विराटको उन विहङ्गमोंद्वारा नोचे जाते देख कजरारी आँखोंवाली उनकी रानियाँ आतुर हो-होकर उन्हें हटानेकी चेष्टा करती हैं, पर हटा नहीं पाती हैं ॥ ३२ ॥

आसामातपतप्तानामायासेन च योषिताम्।
श्रमेण च विवर्णानां वक्त्राणां विप्लुतं वपुः ॥ ३३ ॥

इन युवतियोंके मुखारविन्द धूपसे तप गये हैं, आयास और परिश्रमसे उनके रंग फीके पड़ गये हैं ॥ ३३ ॥

उत्तरं चाभिमन्युं च काम्बोजं च सुदक्षिणम्।
शिशूनेतान् हतान् पश्य लक्ष्मणं च सुदर्शनम् ॥ ३४ ॥
आयोधनशिरोमध्ये शयानं पश्य माधव ॥ ३५ ॥

माधव ! उत्तर, अभिमन्यु, काम्बोजनिवासी सुदक्षिण और सुन्दर दिखायी देनेवाले लक्ष्मण—ये सभी बालक थे। इन मारे गये बालकोंको देखो। युद्धके मुहानेपर सोये हुए परम सुन्दर कुमार लक्ष्मणपर भी दृष्टिपात करो ॥ ३४-३५ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीवाक्यविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

गान्धारीके द्वारा कर्णको देखकर उसके शौर्य तथा उसकी स्त्रीके विलापका श्रीकृष्णके सम्मुख वर्णन

गान्धार्युवाच

एष वैकर्तनः शेते महेष्वासो महारथः।
ज्वलितानलवत् संख्ये संशान्तः पार्थतेजसा ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—श्रीकृष्ण ! देखो, यह महाधनुर्धर महारथी वैकर्तन कर्ण कुन्तीकुमार अर्जुनके तेजसे बुझी हुई प्रज्वलित आगके समान युद्धस्थलमें शान्त होकर सो रहा है ॥

पश्य वैकर्तनं कर्णं निहत्यातिरथान् बहून्।
शोणितौघपरीताङ्गं शयानं पतितं भुवि ॥ २ ॥

माधव ! देखो, वैकर्तन कर्ण बहुत-से अतिरथी वीरोंका संहार करके स्वयं भी खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर सोया पड़ा है ॥ २ ॥

अमर्षी दीर्घरोषश्च महेष्वासो महाबलः ।
रणे विनिहतः शेते शूरो गाण्डीवधन्वना ॥ ३ ॥

शूरवीर कर्ण महान् बलवान् और महाधनुर्धर था। यह दीर्घकालतक रोषमें भरा रहनेवाला और अमर्षशील था, परंतु गाण्डीवधारी अर्जुनके हाथसे मारा जाकर यह वीर रणभूमिमें सो गया है ॥ ३ ॥

यं स्म पाण्डवसंत्रासान्मम पुत्रा महारथाः ।
प्रायुध्यन्त पुरस्कृत्य मातङ्गा इव यूथपम् ॥ ४ ॥
शार्दूलमिव सिंहेन समरे सव्यसाचिना ।
मातङ्गमिव मत्तेन मातङ्गेन निपातितम् ॥ ५ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनके डरसे मेरे महारथी पुत्र जिसे आगे करके यूथपतिको आगे रखकर लड़नेवाले हाथियोंके समान पाण्डवसेनाके साथ युद्ध करते थे, उसी वीरको सव्यसाची अर्जुनने समराङ्गणमें उसी तरह मार डाला है, जैसे एक सिंहने दूसरे सिंहको तथा एक मतवाले हाथीने दूसरे मदोन्मत्त गजराजको मार गिराया हो ॥ ४-५ ॥

समेताः पुरुषव्याघ्र निहतं शूरमाहवे ।
प्रकीर्णमूर्धजाः पत्न्यो रुदत्यः पर्युपासते ॥ ६ ॥

पुरुषसिंह ! रणभूमिमें मारे गये इस शूरवीरके पास आकर इसकी पत्नियाँ सिरके बाल बिखेरे बैठी हुई रो रही हैं॥

उद्विग्नः सततं यस्माद् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
त्रयोदश समा निद्रां चिन्तयन् नाध्यगच्छत ॥ ७ ॥
अनाधृष्यः परैर्युद्धे शत्रुभिर्मघवानिव ।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान् हिमवानिव निश्चलः ॥ ८ ॥
स भूत्वा शरणं वीरो धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
भूमौ विनिहतः शेते वातभग्न इव द्रुमः ॥ ९ ॥

माधव ! जिससे निरन्तर उद्विग्न रहनेके कारण धर्मराज युधिष्ठिरको चिन्ताके मारे तेरह वर्षोंतक नींद नहीं आयी, जो युद्धस्थलमें इन्द्रके समान शत्रुओंके लिये अजेय था, प्रलयङ्कर अग्निके समान तेजस्वी और हिमालयके समान निश्चल था, वही वीर कर्ण धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके लिये शरणदाता हो मारा जाकर आँधीसे टूटकर पड़े हुए वृक्षके समान धराशायी हो गया है ॥ ७-९ ॥

पश्य कर्णस्य पत्नीं त्वं वृषसेनस्य मातरम् ।
लालप्यमानां करुणं रुदतीं पतितां भुवि ॥ १० ॥

देखो, कर्णकी पत्नी एवं वृषसेनकी माता पृथ्वीपर गिरकर रोती हुई कैसा करुणाजनक विलाप कर रही है ? ॥१०॥

आचार्यशापोऽनुगतो ध्रुवं त्वां
यदग्रसच्चक्रमिदं धरित्री ।
ततः शरेणापहृतं शिरस्ते
धनंजयेनाहवशोभिना युधि ॥ ११ ॥

'प्राणनाथ ! निश्चय ही तुमपर आचार्यका दिया हुआ शाप लागू हो गया, जिससे इस पृथ्वीने तुम्हारे रथके पहियेको ग्रस लिया, तभी युद्धमें शोभा पानेवाले अर्जुनने रणभूमिमें अपने बाणसे तुम्हारा सिर काट लिया' ॥ ११ ॥

हाहा धिगेषा पतिता विसंज्ञा
समीक्ष्य जाम्बूनदबद्धकक्षम् ।
कर्णं महाबाहुमदीनसत्त्वं
सुषेणमाता रुदती भृशार्ता ॥ १२ ॥

हाय ! हाय ! मुझे धिक्कार है। सुवर्ण-कवचधारी उदार हृदय महाबाहु कर्णको इस अवस्थामें देखकर अत्यन्त आतुर हो रोती हुई सुषेणकी माता मूर्छित होकर गिर पड़ी॥

अल्पावशेषोऽपि कृतो महात्मा
शरीरभक्षैः परिभक्षयद्भिः ।
द्रष्टुं न नः प्रीतिकरः शशीव
कृष्णस्य पक्षस्य चतुर्दशाहे ॥ १३ ॥

मानव-शरीरका भक्षण करनेवाले जन्तुओंने खा-खाकर महामना कर्णके शरीरको थोड़ा-सा ही शेष रहने दिया है। उसका यह अल्पावशेष शरीर कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके चन्द्रमाकी भाँति देखनेपर हमलोगोंको प्रसन्नता नहीं प्रदान करता है ॥ १३ ॥

सा वर्तमाना पतिता पृथिव्या-
मुत्थाय दीना पुनरेव चैषा ।
कर्णस्य वक्त्रं परिजिघ्रमाणा
रोरूयते पुत्रवधाभितप्ता ॥ १४ ॥

वह बेचारी कर्णकी पत्नी पृथ्वीपर गिरकर उठी और उठकर पुनः गिर पड़ी। कर्णका मुख सूँघती हुई यह नारी अपने पुत्रके वधसे संतप्त हो फूट-फूटकर रो रही है ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि कर्णदर्शनो नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें कर्णका दर्शनविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

अपनी-अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए अवन्ती-नरेश और जयद्रथको देखकर तथा दुःशलापर दृष्टिपात करके गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप

गान्धार्युवाच

आवन्त्यं भीमसेनेन भक्षयन्ति निपातितम् ।
गृध्रगोमायवः शूरं बहुबन्धुमबन्धुवत् ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—भीमसेनने जिसे मार गिराया था,

वह शूरवीर अवन्तीनरेश बहुतेरे बन्धु-बान्धवोंसे सम्पन्न था; परंतु आज उसे बन्धुहीनकी भाँति गीध और गीदड़ नोच-नोचकर खा रहे हैं ॥ १ ॥

तं पश्य कदनं कृत्वा शूराणां मधुसूदन ।
शयानं वीरशयने रुधिरेण समुक्षितम् ॥ २ ॥

मधुसूदन ! देखो, अनेकों शूरवीरोंका संहार करके वह खूनसे लथपथ हो वीरशय्यापर सो रहा है ॥ २ ॥

तं शृगालाश्च कङ्काश्च क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः ।
तेन तेन विकर्षन्ति पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ ३ ॥

उसे सियार, कङ्क और नाना प्रकारके मांसभक्षी जीवजन्तु इधर-उधर खींच रहे हैं । यह समयका उलट-फेर तो देखो ॥

शयानं वीरशयने शूरमाक्रन्दकारिणम् ।
आवन्त्यमभितो नार्यो रुदत्यः पर्युपासते ॥ ४ ॥

भयानक मार-काट मचानेवाले इस शूरवीर अवन्तीनरेशको वीरशय्यापर सोया हुआ देख उसकी स्त्रियाँ रोती हुई उसे सब ओरसे घेरकर बैठी हैं ॥ ४ ॥

प्रातिपेयं महेष्वासं हतं भल्लेन बाह्लिकम् ।
प्रसुप्तमिव शार्दूलं पश्य कृष्ण मनस्विनम् ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, महाधनुर्धर प्रतीपनन्दन मनस्वी बाह्लिक भल्लसे मारे जाकर सोये हुए सिंहके समान पड़े हैं ॥ ५ ॥

अतीव मुखवर्णोऽस्य निहतस्यापि शोभते ।
सोमस्येवाभिपूर्णस्य पौर्णमास्यां समुद्यतः ॥ ६ ॥

रणभूमिमें मारे जानेपर भी पूर्णमासीको उगते हुए पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति इनके मुखकी कान्ति अत्यन्त प्रकाशित हो रही है ॥

पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञां चाभिरक्षता ।
पाकशासनिना संख्ये वार्धक्षत्रिर्निपातितः ॥ ७ ॥
एकादश चमूर्भित्त्वा रक्ष्यमाणं महात्मना ।
सत्यं चिकीर्षता पश्य हतमेनं जयद्रथम् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण ! पुत्रशोकसे संतप्त हो अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन करते हुए इन्द्रकुमार अर्जुनने युद्धस्थलमें वृद्धक्षत्रके पुत्र जयद्रथको मार गिराया है । यद्यपि उसकी रक्षाकी पूरी व्यवस्था की गयी थी, तब भी अपनी प्रतिज्ञाको सत्य कर दिखानेकी इच्छावाले महात्मा अर्जुनने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंका भेदन करके जिसे मार डाला था, वही यह जयद्रथ यहाँ पड़ा है । इसे देखो ॥ ७–८ ॥

सिन्धुसौवीरभर्तारं दर्पपूर्णं मनस्विनम् ।
भक्षयन्ति शिवा गृध्रा जनार्दन जयद्रथम् ॥ ९ ॥

जनार्दन ! सिन्धु और सौवीर देशके स्वामी अभिमानी और मनस्वी जयद्रथको गीध और सियार नोच-नोचकर खा रहे हैं ।

संरक्ष्यमाणं भार्याभिरनुरक्ताभिरच्युत ।
भीषयन्त्यो विकर्षन्ति गहनं निम्नमन्तिकात् ॥ १० ॥

अच्युत ! इसमें अनुराग रखनेवाली इसकी पत्नियाँ यद्यपि रक्षामें लगी हुई हैं, तथापि गीदड़ियाँ उन्हें डरवाकर जयद्रथकी लाशको उनके निकटसे गहरे गड्ढेकी ओर खींचे लिये जा रही हैं ॥ १० ॥

तमेताः पर्युपासन्ते रक्ष्यमाणं महाभुजम् ।
सिन्धुसौवीरभर्तारं काम्बोजयवनस्त्रियः ॥ ११ ॥

ये काम्बोज और यवनदेशकी स्त्रियाँ सिन्धु और सौवीरदेशके स्वामी महाबाहु जयद्रथको चारों ओरसे घेरकर बैठी हैं और वह उन्हींके द्वारा सुरक्षित हो रहा है ॥ ११ ॥

यदा कृष्णामुपादाय प्राद्रवत् केकयैः सह ।
तदैव वध्यः पाण्डूनां जनार्दन जयद्रथः ॥ १२ ॥
दुःशलां मानयद्भिस्तु तदा मुक्तो जयद्रथः ।
कथमद्य न तां कृष्ण मानयन्ति स्म ते पुनः ॥ १३ ॥

जनार्दन ! जिस दिन जयद्रथ द्रौपदीको हरकर केकयोंके साथ भागा था, उसी दिन यह पाण्डवोंके द्वारा वध्य हो गया था; परंतु उस समय दुःशलाका सम्मान करते हुए उन्होंने जयद्रथको जीवित छोड़ दिया था! श्रीकृष्ण ! उन्हीं पाण्डवोंने आज फिर क्यों नहीं उसका सम्मान किया ? ॥ १२-१३ ॥

सैषा मम सुता बाला विलपन्ती च दुःखिता ।
आत्मना हन्ति चात्मानमाक्रोशन्ती च पाण्डवान् ॥ १४ ॥

देखो, वहीं मेरी यह बेटी दुःशला जो अभी बालिका है, किस तरह दुखी हो-होकर विलाप कर रही है ? और पाण्डवोंको कोसती हुई स्वयं ही अपनी छाती पीट रही है ! ॥ १४ ॥

किं नु दुःखतरं कृष्ण परं मम भविष्यति ।
यत् सुता विधवा बाला स्नुषाश्च निहतेश्वराः ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण ! मेरे लिये इससे बढ़कर महान् दुःखकी बात और क्या होगी कि यह छोटी अवस्थाकी मेरी बेटी विधवा हो गयी तथा मेरी सारी पुत्रवधुएँ भी अनाथा हो गयीं ॥ १५ ॥

हा हा धिग् दुःशलां पश्य वीतशोकभयामिव ।
शिरो भर्तुरनासाद्य धावमानामितस्ततः ॥ १६ ॥

हाय ! हाय, धिक्कार है ! देखो,देखो दुःशला शोक और भयसे रहित-सी होकर अपने पतिका मस्तक न पानेके कारण इधर-उधर दौड़ रही है ॥ १६ ॥

वारयामास यः सर्वान् पाण्डवान् पुत्रगृद्धिनः ।
स हत्वा विपुलाः सेनाः स्वयं मृत्युवशं गतः ॥ १७ ॥

जिस वीरने अपने पुत्रको बचानेकी इच्छावाले समस्त पाण्डवोंको अकेले रोक दिया था, वही कितनी ही सेनाओंका संहार करके स्वयं मृत्युके अधीन हो गया ॥ १७ ॥

तं मत्तमिव मातङ्गं वीरं परमदुर्जयम् ।
परिवार्य रुदन्त्येताः स्त्रियश्चन्द्रोपमाननाः ॥ १८ ॥

मतवाले हाथीके समान उस परम दुर्जय वीरको सब ओरसे घेरकर ये चन्द्रमुखी रमणियाँ रो रही हैं ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीका वाक्यविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

शल्य, भगदत्त, भीष्म और द्रोणको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख गान्धारीका विलाप

गान्धार्युवाच

एष शल्यो हतः शेते साक्षान्नकुलमातुलः ।
धर्मज्ञेन हतस्तात धर्मराजेन संयुगे ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—तात ! देखो, ये नकुलके सगे मामा शल्य मरे पड़े हैं। इन्हें धर्मके ज्ञाता धर्मराज युधिष्ठिरने युद्धमें मारा है ॥ १ ॥

यस्त्वया स्पर्धते नित्यं सर्वत्र पुरुषर्षभ ।
स एष निहतः शेते मद्रराजो महाबलः ॥ २ ॥

पुरुषोत्तम ! जो सदा और सर्वत्र तुम्हारे साथ होड़ लगाये रहते थे, वे ही ये महाबली मद्रराज शल्य यहाँ मारे जाकर चिरनिद्रामें सो रहे हैं ॥ २ ॥

येन संगृह्णता तात रथमाधिरथेर्युधि ।
जयार्थं पाण्डुपुत्राणां तथा तेजोवधः कृतः ॥ ३ ॥

तात ! ये वे ही शल्य हैं, जिन्होंने युद्धमें सूतपुत्र कर्णके रथकी बागडोर सँभालते समय पाण्डवोंकी विजयके लिये उसके तेज और उत्साहको नष्ट किया था ॥ ३ ॥

अहो धिक्पश्य शल्यस्य पूर्णचन्द्रसुदर्शनम् ।
मुखं पद्मपलाशाक्षं काकैरादष्टमव्रणम् ॥ ४ ॥

अहो ! धिक्कार है । देखो न, शल्यके पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति दर्शनीय तथा कमलदलके सदृश नेत्रोंवाले व्रणरहित मुखको कौओंने कुछ-कुछ काट दिया है ॥ ४ ॥

अस्य चामीकराभस्य तप्तकाञ्चनसप्रभा ।
आस्याद् विनिःसृता जिह्वा भक्ष्यते कृष्ण पक्षिभिः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण ! सुवर्णके समान कान्तिमान् शल्यके मुखसे तपाये हुए सोनेके समान कान्तिवाली जीभ बाहर निकल आयी है और पक्षी उसे नोच-नोचकर खा रहे हैं ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरेण निहतं शल्यं समितिशोभनम् ।
रुदत्यः पर्युपासन्ते मद्रराजं कुलाङ्गनाः ॥ ६ ॥

युधिष्ठिरके द्वारा मारे गये तथा युद्धमें शोभा पानेवाले मद्रराज शल्यको ये कुलाङ्गनाएँ चारों ओरसे घेरकर बैठी हैं और रो रही हैं ॥ ६ ॥

एताः सुसूक्ष्मवसना मद्रराजं नरर्षभम् ।
क्रोशन्त्योऽथ समासाद्य क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ ७ ॥

अत्यन्त महीन वस्त्र पहने हुए ये क्षत्राणियाँ क्षत्रिय-शिरोमणि नरश्रेष्ठ मद्रराजके पास आकर कैसा करुण क्रन्दन कर रही हैं ॥ ७ ॥

शल्यं निपतितं नार्यः परिवार्याभितः स्थिताः ।
वासिता गृष्टयः पङ्के परिमग्नमिव द्विपम् ॥ ८ ॥

रणभूमिमें गिरे हुए राजा शल्यको उनकी स्त्रियाँ उसी तरह सब ओरसे घेरे हुए हैं, जैसे एक बारकी ब्यायी हुई हथिनियाँ कीचड़में फँसे हुए गजराजको घेरकर खड़ी हों ॥

शल्यं शरणदं शूरं पश्येमं वृष्णिनन्दन ।
शयानं वीरशयने शरैर्विशकलीकृतम् ॥ ९ ॥

वृष्णिनन्दन ! देखो, ये दूसरोंको शरण देनेवाले शूरवीर शल्य बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर वीरशय्यापर सो रहे हैं ॥ ९ ॥

एष शैलालयो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
गजाङ्कुशधरः श्रीमाञ्शेते भुवि निपातितः ॥ १० ॥

ये पर्वतीय, तेजस्वी एवं प्रतापी राजा भगदत्त हाथमें हाथीका अङ्कुश लिये पृथ्वीपर सो रहे हैं । इन्हें अर्जुनने मार गिराया था ॥

यस्य रुक्ममयी माला शिरस्येषा विराजते ।
श्वापदैर्भक्ष्यमाणस्य शोभयन्तीव मूर्धजान् ॥ ११ ॥

इन्हें हिंसक जीव-जन्तु खा रहे हैं । इनके सिरपर यह सोनेकी माला विराज रही है, जो केशोंकी शोभा बढ़ाती-सी जान पड़ती है ॥ ११ ॥

एतेन किल पार्थस्य युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
रोमहर्षणमत्युग्रं शक्रस्य त्वहिना यथा ॥ १२ ॥

जैसे वृत्रासुरके साथ इन्द्रका अत्यन्त भयङ्कर संग्राम हुआ था, उसी प्रकार इन भगदत्तके साथ कुन्तीकुमार अर्जुनका अत्यन्त दारुण एवं रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था ॥ १२ ॥

योधयित्वा महाबाहुरेष पार्थं धनंजयम् ।
संशयं गमयित्वा च कुन्तीपुत्रेण पातितः ॥ १३ ॥

उन महाबाहुने कुन्तीकुमार धनंजयके साथ युद्ध करके उन्हें संशयमें डाल दिया था; परंतु अन्तमें ये उन कुन्तीकुमार-के ही हाथसे मारे गये ॥ १३ ॥

यस्य नास्ति समो लोके शौर्ये वीर्ये च कश्चन ।
स एष निहतः शेते भीष्मो भीष्मकृताहवे ॥ १४ ॥

संसारमें शौर्य और बलमें जिनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, वे ही ये युद्धमें भयङ्कर कर्म करनेवाले भीष्मजी घायल हो बाणशय्यापर सो रहे हैं ॥ १४ ॥

पश्य शान्तनवं कृष्ण शयानं सूर्यवर्चसम् ।
युगान्त इव कालेन पतितं सूर्यमम्बरात् ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, ये सूर्यके समान तेजस्वी शान्तनुनन्दन भीष्म कैसे सो रहे हैं, ऐसा जान पड़ता है, मानो प्रलयकालमें कालसे प्रेरित हो सूर्यदेव आकाशसे भूमिपर गिर पड़े हैं ॥ १५ ॥

एष तप्त्वा रणे शत्रूञ्शस्त्रतापेन वीर्यवान् ।
नरसूर्योऽस्तमभ्येति सूर्योऽस्तमिव केशव ॥ १६ ॥

केशव ! जैसे सूर्य सारे जगत्को ताप देकर अस्ताचलको चले जाते हैं, उसी तरह ये पराक्रमी मानवसूर्य रणभूमिमें अपने शस्त्रोंके प्रतापसे शत्रुओंको संतप्त करके अस्त हो रहे हैं ॥ १६ ॥

शरतल्पगतं भीष्ममूर्ध्वरेतसमच्युतम् ।
शयानं वीरशयने पश्य शूरनिषेविते ॥ १७ ॥

जो ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी रहकर कभी मर्यादासे च्युत नहीं हुए हैं, उन भीष्मको शूरसेवित वीरोचित शयन बाणशय्यापर सोते हुए देख लो ॥ १७ ॥

कर्णिनालीकनाराचैरास्तीर्य शयनोत्तमम् ।
आविश्य शेते भगवान् स्कन्दः शरवणं यथा ॥ १८ ॥

जैसे भगवान् स्कन्द सरकण्डोंके समूहपर सोये थे, उसी प्रकार ये भीष्मजी कर्णी, नालीक और नाराच आदि बाणोंकी उत्तम शय्या बिछाकर उसीका आश्रय ले सो रहे हैं ॥ १८ ॥

अतूलपूर्णं गाङ्गेयस्त्रिभिर्बाणैः समन्वितम् ।
उपधायोपधानाग्र्यं दत्तं गाण्डीवधन्वना ॥ १९ ॥

इन गङ्गानन्दन भीष्मने रुई भरा हुआ तकिया नहीं लिया है । इन्होंने तो गाण्डीवधारी अर्जुनके दिये हुए तीन बाणोंद्वारा निर्मित श्रेष्ठ उपधान (तकिये) को ही स्वीकार किया है ॥ १९ ॥

पालयानः पितुः शास्त्रमूर्ध्वरेता महायशाः ।
एष शान्तनवः शेते माधवाप्रतिमो युधि ॥ २० ॥

माधव ! पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए महायशस्वी नैष्ठिक ब्रह्मचारी ये शान्तनुनन्दन भीष्म जिनकी युद्धमें कहीं तुलना नहीं है, यहाँ सो रहे हैं ॥ २० ॥

धर्मात्मा तात सर्वज्ञः पारावर्येण निर्णये ।
अमर्त्य इव मर्त्यः सन्नेष प्राणानधारयत् ॥ २१ ॥

तात ! ये धर्मात्मा और सर्वज्ञ हैं । परलोक और इहलोकसम्बन्धी ज्ञानद्वारा सभी आध्यात्मिक प्रश्नोंका निर्णय करनेमें समर्थ हैं तथा मनुष्य होनेपर भी देवताके तुल्य हैं; इन्होंने अभीतक अपने प्राण धारण कर रक्खे हैं ॥ २१ ॥

नास्ति युद्धे कृती कश्चिन्न विद्वान् न पराक्रमी ।
यत्र शान्तनवो भीष्मः शेतेऽद्य निहतः शरैः ॥ २२ ॥

जब ये शान्तनुनन्दन भीष्म भी आज शत्रुओंके बाणोंसे मारे जाकर सो रहे हैं तो यही कहना पड़ता है कि 'युद्धमें न कोई कुशल है, न विद्वान् है और न पराक्रमी ही है' ॥ २२ ॥

स्वयमेतेन शूरेण पृच्छ्यमानेन पाण्डवैः ।
धर्मज्ञेनाहवे मृत्युरादिष्टः सत्यवादिना ॥ २३ ॥

पाण्डवोंके पूछनेपर इन धर्मज्ञ एवं सत्यवादी शूरवीरने स्वयं ही अपनी मृत्युका उपाय बता दिया था ॥ २३ ॥

प्रणष्टः कुरुवंशश्च पुनर्येन समुद्धृतः ।
स गतः कुरुभिः सार्धं महाबुद्धिः पराभवम् ॥ २४ ॥

जिन्होंने नष्ट हुए कुरुवंशका पुनः उद्धार किया था, वे ही परम बुद्धिमान् भीष्म इन कौरवोंके साथ परास्त हो गये ॥

धर्मेषु कुरवः कं नु परिप्रक्ष्यन्ति माधव ।
गते देवव्रते स्वर्गं देवकल्पे नरर्षभे ॥ २५ ॥

माधव ! इन देवतुल्य नरश्रेष्ठ देवव्रतके स्वर्गलोकमें चले जानेपर अब कौरव किसके पास जाकर धर्मविषयक प्रश्न करेंगे ॥ २५ ॥

अर्जुनस्य विनेतारमाचार्यं सात्यकेस्तथा ।
तं पश्य पतितं द्रोणं कुरूणां गुरुमुत्तमम् ॥ २६ ॥

जो अर्जुनके शिक्षक, सात्यकिके आचार्य तथा कौरवोंके श्रेष्ठ गुरु थे, वे द्रोणाचार्य रणभूमिमें गिरे हुए हैं, उन्हें भी देख लो ॥ २६ ॥

अस्त्रं चतुर्विधं वेद यथैव त्रिदशेश्वरः ।
भार्गवो वा महावीर्यस्तथा द्रोणोऽपि माधव ॥ २७ ॥

माधव ! जैसे देवराज इन्द्र अथवा महापराक्रमी परशुरामजी चार प्रकारकी अस्त्रविद्याको जानते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्य भी जानते थे ॥ २७ ॥

यस्य प्रसादाद् बीभत्सुः पाण्डवः कर्म दुष्करम् ।
चकार स हतः शेते नैनमस्त्राण्यपालयन् ॥ २८ ॥

जिनके प्रसादसे पाण्डुनन्दन अर्जुनने दुष्कर कर्म किया है, वे ही आचार्य यहाँ मरे पड़े हैं । उन अस्त्रोंने इनकी रक्षा नहीं की ॥ २८ ॥

यं पुरोधाय कुरव आह्वयन्ति स्म पाण्डवान् ।
सोऽयं शस्त्रभृतां श्रेष्ठो द्रोणः शस्त्रैः परिक्षतः ॥ २९ ॥

जिनको आगे रखकर कौरव पाण्डवोंको ललकारा करते थे, वे ही शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य शस्त्रोंसे क्षत-विक्षत हो गये हैं ॥ २९ ॥

यस्य निर्दहतः सेनां गतिरग्नेरिवाभवत् ।
स भूमौ निहतः शेते शान्तार्चिरिव पावकः ॥ ३० ॥

शत्रुओंकी सेनाको दग्ध करते समय जिनकी गति अग्निके समान होती थी, वे ही बुझी हुई लपटोंवाली आगके समान मरकर पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ ३० ॥

धनुर्मुष्टिरशीर्णश्च हस्तावापश्च माधव ।
द्रोणस्य निहतस्याजौ दृश्यते जीवतो यथा ॥ ३१ ॥

माधव ! युद्धमें मारे जानेपर भी द्रोणाचार्यके धनुषके साथ जुड़ी हुई मुट्ठी ढीली नहीं हुई है । दस्ताना भी ज्यों-का-त्यों दिखायी देता है, मानो वह जीवित पुरुषके हाथमें हो ॥

वेदा यस्माच्च चत्वारः सर्वाण्यस्त्राणि केशव ।
अनपेतानि वै शूराद् यथैवादौ प्रजापतेः ॥ ३२ ॥
वन्दनार्हाविमौ तस्य बन्दिभिर्वन्दितौ शुभौ ।
गोमायवो विकर्षन्ति पादौ शिष्यशतार्चितौ ॥ ३३ ॥

केशव ! जैसे पूर्वकालसे ही प्रजापति ब्रह्मासे वेद कभी अलग नहीं हुए, उसी प्रकार जिन शूरवीर द्रोणसे चारों वेद और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र कभी दूर नहीं हुए, उन्हींके बन्दीजनोंद्वारा वन्दित इन दोनों सुन्दर एवं वन्दनीय चरणारविन्दोंको जिनकी सैकड़ों शिष्य पूजा कर चुके हैं, गीदड़ घसीट रहे हैं ॥ ३२-३३ ॥

द्रोणं द्रुपदपुत्रेण निहतं मधुसूदन ।
कृपी कृपणमन्वास्ते दुःखोपहतचेतना ॥ ३४ ॥

मधुसूदन ! द्रुपदपुत्रके द्वारा मारे गये द्रोणाचार्यके पास उनकी पत्नी कृपी बड़े दीनभावसे बैठी है। दुःखसे उसकी चेतना लुप्त-सी हो गयी है ॥ ३४ ॥

तां पश्य रुदतीमार्तां मुक्तकेशीमधोमुखीम् ।
हतं पतिमुपासन्तीं द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ॥ ३५ ॥

देखो, कृपी केश खोले नीचे मुँह किये रोती हुई अपने मारे गये पति शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यकी उपासना कर रही है ॥ ३५ ॥

बाणैर्भिन्नतनुत्राणं धृष्टद्युम्नेन केशव ।
उपास्ते वै मृधे द्रोणं जटिला ब्रह्मचारिणी ॥ ३६ ॥

केशव ! धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंसे जिन आचार्य द्रोणका कवच छिन्न-भिन्न कर दिया है, उन्हींके पास युद्धस्थलमें वह जटाधारिणी ब्रह्मचारिणी कृपी बैठी हुई है ॥ ३६ ॥

प्रेतकृत्यं च यतते कृपी कृपणमातुरा ।
हतस्य समरे भर्तुः सुकुमारी यशस्विनी ॥ ३७ ॥

शोकसे दीन और आतुर हुई यशस्विनी सुकुमारी कृपी समरमें मारे गये पतिदेवका प्रेतकर्म करनेकी चेष्टा कर रही है ॥

अग्नीनाधाय विधिवच्चितां प्रज्वाल्य सर्वतः ।
द्रोणमाधाय गायन्ति त्रीणि सामानि सामगाः ॥ ३८ ॥

विधिपूर्वक अग्निकी स्थापना करके चिताको सब ओरसे प्रज्वलित कर दिया गया है और उसपर द्रोणाचार्यके शरीरको रखकर सामगान करनेवाले ब्राह्मण त्रिविध सामका गान करते हैं ॥ ३८ ॥

कुर्वन्ति च चितामेते जटिला ब्रह्मचारिणः ।
धनुर्भिः शक्तिभिश्चैव रथनीडैश्च माधव ॥ ३९ ॥
शरैश्च विविधैरन्यैर्धक्ष्यते भूरितेजसम् ।
इति द्रोणं समाधाय शंसन्ति च रुदन्ति च ॥ ४० ॥
सामभिस्त्रिभिरन्तस्थैरनुशंसन्ति चापरे ।

माधव ! इन जटाधारी ब्रह्मचारियोंने धनुष, शक्ति, रथकी बैठक और नाना प्रकारके बाण तथा अन्य आवश्यक वस्तुओंसे उस चिताका निर्माण किया है। वे उसीपर महातेजस्वी द्रोणको जलाना चाहते थे; इसलिये द्रोणको चितापर रखकर वे वेदमन्त्र पढ़ते और रोते हैं; कुछ लोग अन्त समयमें उपयोगी त्रिविध सामोंका गान करते हैं ॥ ३९-४०½ ॥

अग्नावग्निं समाधाय द्रोणं हुत्वा हुताशने ॥ ४१ ॥
गच्छन्त्यभिमुखा गङ्गां द्रोणशिष्या द्विजातयः ।
अपसव्यां चितिं कृत्वा पुरस्कृत्य कृपीं च ते ॥ ४२ ॥

चिताकी अग्निमें अग्निहोत्रसहित द्रोणाचार्यको रखकर उनकी आहुति दे उन्हींके शिष्य द्विजातिगण कृपीको आगे और चिताको दायें करके गङ्गाजीके तटकी ओर जा रहे हैं ॥ ४१-४२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवचने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीवचनविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

भूरिश्रवाके पास उसकी पत्नियोंका विलाप, उन सबको तथा शकुनिको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख शोकोद्गार

गान्धार्युवाच

सोमदत्तसुतं पश्य युयुधानेन पातितम् ।
वितुद्यमानं विहगैर्बहुभिर्माधवान्तिके ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—माधव ! देखो, सात्यकिने जिन्हें मार गिराया था, वे ही ये सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवा पास ही दिखायी दे रहे हैं। इन्हें बहुत-से पक्षी चोंच मार-मारकर नोच रहे हैं ॥ १ ॥ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तः सोमदत्तो जनार्दन ।
युयुधानं महेष्वासं गर्हयन्निव दृश्यते ॥ २ ॥

जनार्दन ! उधर पुत्रशोकसे संतप्त होकर मरे हुए सोमदत्त महाधनुर्धर सात्यकिकी निन्दा करते हुए-से दिखायी दे रहे हैं ॥ २ ॥

असौ हि भूरिश्रवसो माता शोकपरिप्लुता ।
आश्वासयति भर्तारं सोमदत्तमनिन्दिता ॥ ३ ॥

उधर वे शोकमें डूबी हुई भूरिश्रवाकी सती साध्वी माता अपने पतिको मानो आश्वासन देती हुई कहती हैं—॥ ३ ॥

दिष्ट्या नैनं महाराज दारुणं भरतक्षयम् ।
कुरुसंक्रन्दनं घोरं युगान्तमनुपश्यसि ॥ ४ ॥

'महाराज ! सौभाग्यसे आपको यह भरतवंशियोंका दारुण विनाश, घोर प्रलयके समान कुरुकुलका महासंहार देखनेका अवसर नहीं मिला है ॥ ४ ॥

दिष्ट्या यूपध्वजं पुत्रं वीरं भूरिसहस्रदम् ।
अनेकक्रतुयज्वानं निहतं नानुपश्यसि ॥ ५ ॥

'जिसकी ध्वजामें यूपका चिह्न था, जो सहस्रों स्वर्णमुद्राओंकी भूरि-भूरि दक्षिणा दिया करता था और जिसने अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया था, उस वीर पुत्र भूरिश्रवाकी मृत्युका कष्ट सौभाग्यसे आप नहीं देख रहे हैं ॥

दिष्ट्या स्नुषाणामाक्रन्दे घोरं विलपितं बहु ।

न शृणोषि महाराज सारसीनामिवार्णवे ॥ ६ ॥

'महाराज ! समुद्रतटपर चीत्कार करनेवाली सारसियोंके समान इस युद्धस्थलमें आप अपने इन पुत्रवधुओंका अत्यन्त भयानक विलाप नहीं सुन रहे हैं, यह भाग्यकी ही बात है ॥

एकवस्त्रार्धसंवीताः प्रकीर्णासितमूर्धजाः ।
स्नुषास्ते परिधावन्ति हतापत्या हतेश्वराः ॥ ७ ॥

'आपकी पुत्रवधुएँ एक वस्त्र अथवा आधे वस्त्रसे ही शरीरको ढँककर अपनी काली-काली लटें छिटकाये इस युद्ध-भूमिमें चारों ओर दौड़ रही हैं । इन सबके पुत्र और पति भी मारे जा चुके हैं ॥ ७ ॥

श्वापदैर्भक्ष्यमाणं त्वमहो दिष्ट्या न पश्यसि ।
छिन्नबाहुं नरव्याघ्रमर्जुनेन निपातितम् ॥ ८ ॥
शलं विनिहतं संख्ये भूरिश्रवसमेव च ।
स्नुषाश्च विविधाः सर्वा दिष्ट्या नाद्येह पश्यसि॥ ९ ॥

'अहो ! आपका बड़ा भाग्य है कि अर्जुनने जिसकी एक बाँह काट ली थी और सात्यकिने जिसे मार गिराया था, युद्धमें मारे गये उस भूरिश्रवा और शलको आप हिंसक-जन्तुओंका आहार बनते नहीं देखते हैं तथा इन सब अनेक प्रकारके रूप रंगवाली पुत्रवधुओंको भी आज यहाँ रणभूमिमें भटकती हुई नहीं देख रहे हैं ॥ ८-९ ॥

दिष्ट्या तत् काञ्चनं छत्रं यूपकेतोर्महात्मनः ।
विनिकीर्णं रथोपस्थे सौमदत्तेर्न पश्यसि ॥ १० ॥

'सौभाग्यसे अपने महामनस्वी पुत्र यूपध्वज भूरिश्रवाके रथ-पर खण्डित होकर गिरे हुए उसके सुवर्णमय छत्रको आप नहीं देख पा रहे हैं' ॥ १० ॥

अमूस्तु भूरिश्रवसो भार्याः सात्यकिना हतम् ।
परिवार्यानुशोचन्ति भर्तारमसितेक्षणाः ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण ! भूरिश्रवाकी कजरारे नेत्रोंवाली वे पत्नियाँ सात्यकिद्वारा मारे गये अपने पतिको सब ओरसे घेरकर बार-बार शोकसे पीड़ित हो रही हैं ॥ ११ ॥

एता विलप्य करुणं भर्तृशोकेन कर्शिताः ।
पतन्त्यभिमुखा भूमौ कृपणं बत केशव ॥ १२ ॥

केशव ! पतिशोकसे पीड़ित हुई ये अबलाएँ करुणा-जनक विलाप करके पतिके सामने अत्यन्त दुःखसे पछाड़ खा-खाकर गिर रही हैं ॥ १२ ॥

बीभत्सुरतिबीभत्सं कर्मेदमकरोत् कथम् ।
प्रमत्तस्य यदच्छैत्सीद् बाहुं शूरस्य यज्वनः ॥ १३ ॥

वे कहती हैं—'अर्जुनने यह अत्यन्त घृणित कर्म कैसे किया ? कि दूसरेके साथ युद्धमें लगे रहकर उनकी ओरसे असावधान हुए आप-जैसे यज्ञपरायण शूरवीरकी बाँह काट डाली ॥ १३ ॥

ततः पापतरं कर्म कृतवानपि सात्यकिः ।
यस्मात् प्रायोपविष्टस्य प्राहार्षीत् संशितात्मनः॥ १४ ॥

'उनसे भी बढ़कर घोर पापकर्म सात्यकिने किया है; क्योंकि उन्होंने आमरण अनशनके लिये बैठे हुए एक शुद्धात्मा साधुपुरुषके ऊपर खड्गका प्रहार किया है ॥ १४ ॥

एको द्वाभ्यां हतः शेषे त्वमधर्मेण धार्मिक ।
किं नु वक्ष्यति वै सत्सु गोष्ठीषु च सभासु च ॥ १५ ॥
अपुण्यमयशस्यं च कर्मेदं सात्यकिः स्वयम् ।
इति यूपध्वजस्यैताः स्त्रियः क्रोशन्ति माधव ॥ १६ ॥

'धर्मात्मा महापुरुष ! तुम अकेले दो महारथियोंद्वारा अधर्मपूर्वक मारे जाकर रणभूमिमें सो रहे हो । भला, सात्यकि साधु पुरुषोंकी सभाओं और बैठकोंमें अपने लिये कलङ्कका टीका लगानेवाले इस पापकर्मका वर्णन स्वयं अपने ही मुखसे किस प्रकार करेंगे ?' माधव ! इस प्रकार यूपध्वज-की ये स्त्रियाँ सात्यकिको कोस रही हैं ॥ १५-१६ ॥

भार्या यूपध्वजस्यैषा करसम्मितमध्यमा ।
कृत्वोत्सङ्गे भुजं भर्तुः कृपणं परिदेवति ॥ १७ ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, यूपध्वजकी यह पतली कमरवाली भार्या पतिकी कटी हुई बाँहको गोदमें लेकर बड़े दीनभावसे विलाप कर रही है ॥ १७ ॥

अयं स हन्ता शूराणां मित्राणामभयप्रदः ।
प्रदाता गोसहस्राणां क्षत्रियान्तकरः करः ॥ १८ ॥

वह कहती है—'हाय ! यह वही हाथ है, जिसने युद्धमें अनेक शूरवीरोंका वध, मित्रोंको अभयदान, सहस्रों गोदान तथा क्षत्रियोंका संहार किया है ॥ १८ ॥

अयं स रसनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः ।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः ॥ १९ ॥

'यह वही हाथ है, जो हमारी करधनीको खींच लेता, उभरे हुए स्तनोंका मर्दन करता, नाभि, ऊरु और जघन प्रदेशको छूता और नीवीका बन्धन सरका दिया करता था ॥

वासुदेवस्य सांनिध्ये पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
युध्यतः समरेऽन्येन प्रमत्तस्य निपातितः ॥ २० ॥

'जब मेरे पति समराङ्गणमें दूसरेके साथ युद्धमें संलग्न हो अर्जुनकी ओरसे असावधान थे, उस समय भगवान् श्री-कृष्णके निकट अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अर्जुनने इस हाथको काट गिराया था ॥ २० ॥

किं नु वक्ष्यसि संसत्सु कथासु च जनार्दन ।
अर्जुनस्य महत् कर्म स्वयं वा स किरीटभृत् ॥ २१ ॥

'जनार्दन ! तुम सत्पुरुषोंकी सभाओंमें, बातचीतके प्रसङ्गमें अर्जुनके महान् कर्मका किस तरह वर्णन करोगे ?

अथवा स्वयं किरीटधारी अर्जुन ही कैसे इस जघन्य कार्यकी चर्चा करेंगे ?' ॥ २१ ॥

इत्येवं गर्हयित्वैषा तूष्णीमास्ते वराङ्गना ।
तामेतामनुशोचन्ति सपत्न्यः स्वामिव स्नुषाम् ॥ २२ ॥

इस तरह अर्जुनकी निन्दा करके यह सुन्दरी चुप हो गयी है । इसकी बड़ी सौतें इसके लिये उसी प्रकार शोक प्रकट कर रही हैं, जैसे सास अपनी बहूके लिये किया करती है २२

गान्धारराजः शकुनिर्बलवान् सत्यविक्रमः ।
निहतः सहदेवेन भागिनेयेन मातुलः ॥ २३ ॥

यह गान्धारदेशका राजा महाबली सत्यपराक्रमी शकुनि पड़ा हुआ है । इसे सहदेवने मारा है । भानजेने मामाके प्राण लिये हैं ॥ २३ ॥

यः पुरा हेमदण्डाभ्यां व्यजनाभ्यां स्म वीज्यते ।
स एष पक्षिभिः पक्षैः शयान उपवीज्यते ॥ २४ ॥

पहले सोनेके डंडोंसे विभूषित दो-दो व्यजनोंद्वारा जिसको हवा की जाती थी, वही शकुनि आज धरतीपर सो रहा है और पक्षी अपनी पाँखोंसे इसको हवा करते हैं ॥ २४ ॥

यः स्वरूपाणि कुरुते शतशोऽथ सहस्रशः ।
तस्य मायाविनो माया दग्धाः पाण्डवतेजसा ॥ २५ ॥

जो अपने सैकड़ों और हजारों रूप बना लिया करता था, उस मायावीकी सारी मायाएँ पाण्डुपुत्र सहदेवके तेजसे दग्ध हो गयीं ॥ २५ ॥

मायया निकृतिप्रज्ञो जितवान् यो युधिष्ठिरम् ।
सभायां विपुलं राज्यं स पुनर्जीवितं जितः ॥ २६ ॥

जो छलविद्याका पण्डित था, जिसने द्यूतसभामें मायाद्वारा युधिष्ठिर तथा उनके विशाल राज्यको जीत लिया था, वही फिर अपना जीवन भी हार गया ॥ २६ ॥

शकुन्ताः शकुनिं कृष्ण समन्तात् पर्युपासते ।
कैतवं मम पुत्राणां विनाशायोपशिक्षितम् ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण ! आज शकुनि (पक्षी) ही इस शकुनिकी चारों ओरसे उपासना करते हैं । इसने मेरे पुत्रोंके विनाशके लिये ही द्यूतविद्या अथवा धूर्तविद्या सीखी थी ॥ २७ ॥

एतेनैतन्महद् वैरं प्रसक्तं पाण्डवैः सह ।
वधाय मम पुत्राणामात्मनः सगणस्य च ॥ २८ ॥

इसीने सगे-सम्बन्धियोंसहित अपने और मेरे पुत्रोंके वधके लिये पाण्डवोंके साथ महान् वैरकी नींव डाली थी ॥२८॥

यथैव मम पुत्राणां लोकाः शस्त्रजिताः प्रभो ।
एवमस्यापि दुर्बुद्धेर्लोकाः शस्त्रेण वै जिताः ॥ २९ ॥

प्रभो ! जैसे मेरे पुत्रोंको शस्त्रोंद्वारा जीते हुए पुण्यलोक प्राप्त हुए हैं, उसी प्रकार इस दुर्बुद्धि शकुनिको भी शस्त्रद्वारा जीते हुए उत्तम लोक प्राप्त होंगे ॥ २९ ॥

कथं च नायं तत्रापि पुत्रान्मे भ्रातृभिः सह ।
विरोधयेदृजुप्रज्ञाननृजुर्मधुसूदन ॥ ३० ॥

मधुसूदन ! मेरे पुत्र सरल बुद्धिके हैं । मुझे भय है कि उन पुण्यलोकोंमें पहुँचकर यह शकुनि फिर किसी प्रकार उन सब भाइयोंमें परस्पर विरोध न उत्पन्न कर दे ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीवाक्यविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

अन्यान्य वीरोंको मरा हुआ देखकर गान्धारीका शोकातुर होकर विलाप करना और क्रोधपूर्वक श्रीकृष्णको यदुवंशविनाशविषयक शाप देना

गान्धार्युवाच

काम्बोजं पश्य दुर्धर्षं काम्बोजास्तरणोचितम् ।
शयानमृषभस्कन्धं हतं पांसुषु माधव ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—माधव ! जो काबुलके बने हुए मुलायम बिछौनोंपर सोनेके योग्य है, वह बैलके समान हृष्ट-पुष्ट कंधोंवाला दुर्जय वीर काम्बोजराज सुदक्षिण मरकर धूलमें पड़ा हुआ है ॥ १ ॥

यस्य क्षतजसंदिग्धौ बाहू चन्दनभूषितौ ।
अवेक्ष्य करुणं भार्या विलपत्यतिदुःखिता ॥ २ ॥

उसकी चन्दनचर्चित भुजाओंको रक्तमें सनी हुई देख उसकी पत्नी अत्यन्त दुखी हो करुणाजनक विलाप कर रही है ॥ २ ॥

इमौ तौ परिघप्रख्यौ बाहू शुभतलाङ्गुली ।
ययोर्विवरमापन्नां न रतिर्मां पुराजहात् ॥ ३ ॥
कां गतिं तु गमिष्यामि त्वया हीना जनेश्वर ।

वह कहती है—'प्राणनाथ ! सुन्दर हथेली और अङ्गुलियोंसे युक्त तथा परिघके समान मोटी ये वे ही दोनों भुजाएँ हैं, जिनके भीतर आप मुझे अङ्कमें भर लेते थे और उस अवस्थामें मुझे जो प्रसन्नता प्राप्त होती थी, उसने पहले कभी मेरा साथ नहीं छोड़ा था । जनेश्वर ! अब आपके बिना मेरी क्या गति होगी ?' ॥ ३½ ॥

हतबन्धुरनाथा च वेपन्ती मधुरस्वरा ॥ ४ ॥
आतपे क्लाम्यमानानां विविधानामिव स्रजाम् ।
क्लान्तानामपि नारीणां श्रीर्जहाति न वै तनूः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण ! अपने जीवनबन्धुके मारे जानेसे अनाथ हुई यह रानी काँपती हुई मधुरस्वरसे विलाप कर रही है । घामसे मुरझाती हुई नाना प्रकारकी पुष्पमालाओंके समान ये राजरानियाँ धूपसे तप गयी हैं, तो भी इनके शरीरोंको सौन्दर्य-श्री छोड़ नहीं रही है ॥ ४-५ ॥

शयानमभितः शूरं कालिङ्गं मधुसूदन ।
पश्य दीप्ताङ्गदयुगप्रतिनद्धमहाभुजम् ॥ ६ ॥

मधुसूदन ! देखो, पास ही वह शूरवीर कलिङ्गराज सो रहा है, जिसकी दोनों विशाल भुजाओंमें चमकीले अङ्गद (बाजूबन्द) बँधे हुए हैं ॥ ६ ॥

मागधानामधिपतिं जयत्सेनं जनार्दन ।
आवार्य सर्वतः पत्न्यः प्ररुदत्यः सुविह्वलाः ॥ ७ ॥

जनार्दन ! उधर मगधराज जयत्सेन पड़ा है, जिसे चारों ओरसे घेरकर उसकी पत्नियाँ अत्यन्त व्याकुल हो फूट-फूटकर रो रही हैं ॥ ७ ॥

आसामायतनेत्राणां सुस्वराणां जनार्दन ।
मनःश्रुतिहरो नादो मनो मोहयतीव मे ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण ! मधुर स्वरवाली इन विशाललोचना रानियोंका मन और कानोंको मोह लेनेवाला आर्तनाद मेरे मनको मूर्छित-सा किये देता है ॥ ८ ॥

प्रकीर्णवस्त्राभरणा रुदत्यः शोककर्शिताः ।
स्वास्तीर्णशयनोपेता मागध्यः शेरते भुवि ॥ ९ ॥

इनके वस्त्र और आभूषण अस्त-व्यस्त हो रहे हैं । सुन्दर बिछौनोंसे युक्त शय्याओंपर शयन करनेके योग्य ये मगधदेशकी रानियाँ शोकसे व्याकुल हो रोती हुई भूमिपर लोट रही हैं॥

कोसलानामधिपतिं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
भर्तारं परिवार्यैताः पृथक् प्ररुदिताः स्त्रियः ॥ १० ॥

अपने पति कोसलनरेश राजकुमार बृहद्बलको भी चारों ओरसे घेरकर उनकी रानियाँ अलग-अलग रो रही हैं ॥१०॥

अस्य गात्रगतान् बाणान् कार्ष्णिबाहुबलार्पितान् ।
उद्धरन्त्यसुखाविष्टा मूर्छमानाः पुनः पुनः ॥ ११ ॥

अभिमन्युके बाहुबलसे प्रेरित होकर कोसलनरेशके अङ्गोंमें धँसे हुए बाणोंको ये रानियाँ अत्यन्त दुखी होकर निकालती हैं और बारंबार मूर्छित हो जाती हैं ॥ ११ ॥

आसां सर्वानवद्यानामातपेन परिश्रमात् ।
प्रम्लाननलिनाभानि भान्ति वक्त्राणि माधव ॥ १२ ॥

माधव ! इन सर्वाङ्गसुन्दरी राजमहिलाओंके सुन्दर मुख धूप और परिश्रमके कारण मुरझाये हुए कमलोंके समान प्रतीत होते हैं ॥ १२ ॥

द्रोणेन निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः ।
धृष्टद्युम्नसुताः सर्वे शिशवो हेममालिनः ॥ १३ ॥

ये द्रोणाचार्यके मारे हुए धृष्टद्युम्नके सभी छोटे-छोटे शूरवीर बालक सो रहे हैं । इनकी भुजाओंमें सुन्दर अङ्गद और गलेमें सोनेके हार शोभा पाते हैं ॥ १३ ॥

रथाग्न्यगारं चापार्चिःशरशक्तिगदेन्धनम् ।
द्रोणमासाद्य निर्दग्धाः शलभा इव पावकम् ॥ १४ ॥

द्रोणाचार्य प्रज्वलित अग्निके समान थे, उनका रथ ही अग्निशाला था, धनुष ही उस अग्निकी लपट था, बाण, शक्ति और गदाएँ समिधाका काम दे रही थीं, धृष्टद्युम्नके पुत्र पतङ्गोंके समान उस द्रोणरूपी अग्निमें जलकर भस्म हो गये ॥ १४ ॥

तथैव निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः ।
द्रोणेनाभिमुखाः सर्वे भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥ १५ ॥

इसी प्रकार सुन्दर अङ्गदोंसे विभूषित पाँचों शूरवीर भाई केकय राजकुमार समराङ्गणमें सम्मुख होकर जूझ रहे थे । वे सब-के-सब आचार्य द्रोणके हाथसे मारे जाकर सो रहे हैं ॥

तप्तकाञ्चनवर्माणस्तालध्वजरथव्रजाः ।
भासयन्ति महीं भासा ज्वलिता इव पावकाः ॥ १६ ॥

इन सबके कवच तपाये हुए सुवर्णके बने हैं और इनके रथ-समूह तालचिह्नित ध्वजाओंसे सुशोभित हैं । ये राजकुमार अपनी प्रभासे प्रज्वलित अग्निके समान भूतलको प्रकाशित कर रहे हैं ॥ १६ ॥

द्रोणेन द्रुपदं संख्ये पश्य माधव पातितम् ।
महाद्विपमिवारण्ये सिंहेन महता हतम् ॥ १७ ॥

माधव ! देखो, युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यने जिन्हें मार गिराया था, वे राजा द्रुपद सो रहे हैं, मानो किसी वनमें विशाल सिंहके द्वारा कोई महान् गजराज मारा गया हो १७

पाञ्चालराज्ञो विमलं पुण्डरीकाक्ष पाण्डुरम् ।
आतपत्रं समाभाति शरदीव निशाकरः ॥ १८ ॥

कमलनयन ! पाञ्चालराजका वह निर्मल श्वेत छत्र शरत्कालके चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित हो रहा है ॥ १८ ॥

एतास्तु द्रुपदं वृद्धं स्नुषा भार्याश्च दुःखिताः ।
दग्ध्वा गच्छन्ति पाञ्चाल्यं राजानमपसव्यतः ॥ १९ ॥

इन बूढ़े पाञ्चालराज द्रुपदको इनकी दुखी रानियाँ और पुत्रवधुएँ चितामें जलाकर इनकी प्रदक्षिणा करके जा रही हैं ॥ १९ ॥

धृष्टकेतुं महात्मानं चेदिपुङ्गवमङ्गनाः ।
द्रोणेन निहतं शूरं हरन्ति हृतचेतसः ॥ २० ॥

चेदिराज महामना शूरवीर धृष्टकेतुको जो द्रोणाचार्यके हाथसे मारा गया है, उसकी रानियाँ अचेत-सी होकर दाह-संस्कारके लिये ले जा रही हैं ॥ २० ॥

द्रोणास्त्रमभिहत्यैष विमर्दे मधुसूदन ।
महेष्वासो हतः शेते नद्या हत इव द्रुमः ॥ २१ ॥

मधुसूदन ! यह महाधनुर्धर वीर संग्राममें द्रोणाचार्यके अस्त्र-शस्त्रोंका नाश करके नदीके वेगसे कटे हुए वृक्षके समान मरकर धराशायी हो गया ॥ २१ ॥

एष चेदिपतिः शूरो धृष्टकेतुर्महारथः ।
शेते विनिहतः संख्ये हत्वा शत्रून् सहस्रशः ॥ २२ ॥

यह चेदिराज शूरवीर महारथी धृष्टकेतु सहस्रों शत्रुओंको मारकर मारा गया और रणशय्यापर सदाके लिये सो गया ॥ २२ ॥

वितुद्यमानं विहगैस्तं भार्याः पर्युपासिताः ।
चेदिराजं हृषीकेश हतं सबलबान्धवम् ॥ २३ ॥

हृषीकेश ! सेना और बन्धुओंसहित मारे गये इस चेदिराजको पक्षी चोंच मार रहे हैं और उसकी स्त्रियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर बैठी हैं ॥ २३ ॥

दाशार्हीपुत्रजं वीरं शयानं सत्यविक्रमम् ।
आरोप्याङ्के रुदन्त्येताश्चेदिराजवराङ्गनाः ॥ २४ ॥

दशार्हकुलकी कन्या (श्रुतश्रवा)के पुत्र शिशुपालका यह सत्यपराक्रमी वीर पुत्र रणभूमिमें सो रहा है और इसे अङ्कमें लेकर ये चेदिराजकी सुन्दरी रानियाँ रो रही हैं ॥ २४ ॥

अस्य पुत्रं हृषीकेश सुवक्त्रं चारुकुण्डलम् ।
द्रोणेन समरे पश्य निकृत्तं बहुधा शरैः ॥ २५ ॥

हृषीकेश ! देखो तो सही, इस धृष्टकेतुके सुन्दर मुख और मनोहर कुण्डलोंवाले पुत्रको द्रोणाचार्यने समराङ्गणमें अपने बाणोंद्वारा मारकर उसके अनेक टुकड़े कर डाले हैं ॥

पितरं नूनमाजिस्थं युद्ध्यमानं परैः सह ।
नाजहात् पितरं वीरमद्यापि मधुसूदन ॥ २६ ॥

मधुसूदन ! रणभूमिमें स्थित होकर शत्रुओंके साथ जूझनेवाले अपने पिताका साथ इसने कभी नहीं छोड़ा था, आज युद्धके बाद भी वह पिताको नहीं छोड़ सका है ॥ २६ ॥

एवं ममापि पुत्रस्य पुत्रः पितरमन्वगात् ।
दुर्योधनं महाबाहो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ २७ ॥

महाबाहो ! इसी प्रकार मेरे पुत्रके पुत्र शत्रुवीरहन्ता लक्ष्मणने भी अपने पिता दुर्योधनका अनुसरण किया है॥२७॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पतितौ पश्य माधव ।
हिमान्ते पुष्पितौ शालौ मरुता गलिताविव ॥ २८ ॥

माधव ! जैसे ग्रीष्म ऋतुमें हवाके वेगसे दो खिले हुए शाल वृक्ष गिर गये हों, उसी प्रकार अवन्तीदेशके दोनों वीर राजपुत्र विन्द और अनुविन्द धराशायी हो गये हैं, इनपर दृष्टिपात करो ॥ २८ ॥

काञ्चनाङ्गदवर्माणौ बाणखड्गधनुर्धरौ ।
ऋषभप्रतिरूपाक्षौ शयानौ विमलस्रजौ ॥ २९ ॥

इन दोनोंने सोनेके कवच धारण किये हैं, बाण, खड्ग और धनुष लिये हैं तथा बैलके समान बड़ी-बड़ी आँखोंवाले ये दोनों वीर चमकीले हार पहने हुए सो रहे हैं ॥ २९ ॥

अवध्याः पाण्डवाः कृष्ण सर्व एव त्वया सह ।
ये मुक्ता द्रोणभीष्माभ्यां कर्णाद् वैकर्तनात् कृपात्॥३०॥
दुर्योधनाद् द्रोणसुतात् सैन्धवाच्च जयद्रथात् ।
सोमदत्ताद् विकर्णाच्च शूराच्च कृतवर्मणः ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्ण ! तुम्हारे साथ ही ये समस्त पाण्डव अवध्य जान पड़ते हैं, जो कि द्रोण, भीष्म, वैकर्तन कर्ण, कृपाचार्य, दुर्योधन, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, सिंधुराज जयद्रथ, सोमदत्त, विकर्ण और शूरवीर कृतवर्माके हाथसे जीवित बच गये हैं ॥ ३०-३१ ॥

ये हन्युः शस्त्रवेगेन देवानपि नरर्षभाः ।
त इमे निहताः संख्ये पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ ३२ ॥

जो नरश्रेष्ठ अपने शस्त्रके वेगसे देवताओंको भी नष्ट कर सकते थे, वे ही ये युद्धमें मार डाले गये हैं; यह कालका उलट-फेर तो देखो ॥ ३२ ॥

नातिभारोऽस्ति दैवस्य ध्रुवं माधव कश्चन ।
यदिमे निहताः शूराः क्षत्रियैः क्षत्रियर्षभाः ॥ ३३ ॥

माधव ! निश्चय ही दैवके लिये कोई भी कार्य अधिक कठिन नहीं है; क्योंकि उसने क्षत्रियोंद्वारा ही इन शूरवीर क्षत्रियशिरोमणियोंका संहार कर डाला है ॥ ३३ ॥

तदैव निहताः कृष्ण मम पुत्रास्तरस्विनः ।
यदैवाकृतकामस्त्वमुपप्लव्यं गतः पुनः ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण ! मेरे वेगशाली पुत्र तो उसी दिन मार डाले गये, जब कि तुम अपूर्णमनोरथ होकर पुनः उपप्लव्यको लौट गये थे ॥ ३४ ॥

शान्तनोश्चैव पुत्रेण प्राज्ञेन विदुरेण च ।
तदैवोक्तास्मि मा स्नेहं कुरुष्वात्मसुतेष्विति ॥ ३५ ॥

मुझे तो शान्तनुनन्दन भीष्म तथा ज्ञानी विदुरने उसी दिन कह दिया था 'कि अब तुम अपने पुत्रोंपर स्नेह न करो' ॥ ३५ ॥

तयोर्हि दर्शनं नैतन्मिथ्या भवितुमर्हति ।
अचिरेणैव मे पुत्रा भस्मीभूता जनार्दन ॥ ३६ ॥

जनार्दन ! उन दोनोंकी यह दृष्टि मिथ्या नहीं हो सकती थी; अतः थोड़े ही समयमें मेरे सारे पुत्र युद्धकी आगमें जलकर भस्म हो गये ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा न्यपतद् भूमौ गान्धारी शोकमूर्छिता।
दुःखोपहतविज्ञाना धैर्यमुत्सृज्य भारत॥ ३७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भारत ! ऐसा कहकर शोकसे मूर्छित हुई गान्धारी धैर्य छोड़कर पृथ्वीपर गिर पड़ीं, दुःखसे उनकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी॥ ३७॥

ततः कोपपरीताङ्गी पुत्रशोकपरिप्लुता।
जगाम शौरिं दोषेण गान्धारी व्यथितेन्द्रिया॥ ३८॥

तदनन्तर उनके सारे अङ्गोंमें क्रोध व्याप्त हो गया। पुत्रशोकमें डूब जानेके कारण उनकी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। उस समय गान्धारीने सारा दोष श्रीकृष्णके ही माथे मढ़ दिया॥ ३८॥

गान्धार्युवाच

पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च दग्धाः कृष्ण परस्परम्।
उपेक्षिता विनश्यन्तस्त्वया कस्माज्जनार्दन॥ ३९॥

गान्धारीने कहा—श्रीकृष्ण ! जनार्दन ! पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्र आपसमें लड़कर भस्म हो गये। तुमने इन्हें नष्ट होते देखकर भी इनकी उपेक्षा कैसे कर दी ? ३९

शक्तेन बहुभृत्येन विपुले तिष्ठता बले।
उभयत्र समर्थेन श्रुतवाक्येन चैव ह॥ ४०॥
इच्छतोपेक्षितो नाशः कुरूणां मधुसूदन।
यस्मात् त्वया महाबाहो फलं तस्मादवाप्नुहि॥ ४१॥

महाबाहु मधुसूदन ! तुम शक्तिशाली थे। तुम्हारे पास बहुत-से सेवक और सैनिक थे। तुम महान् बलमें प्रतिष्ठित थे। दोनों पक्षोंसे अपनी बात मनवा लेनेकी सामर्थ्य तुममें मौजूद थी। तुमने वेद-शास्त्रों और महात्माओंकी बातें सुनी और जानी थीं। यह सब होते हुए भी तुमने स्वेच्छासे कुरु-कुलके नाशकी उपेक्षा की—जान-बूझकर इस वंशका विनाश होने दिया। यह तुम्हारा महान् दोष है, अतः तुम इसका फल प्राप्त करो॥ ४०-४१॥

पतिशुश्रूषया यन्मे तपः किंचिदुपार्जितम्।
तेन त्वां दुरवापेन शप्स्ये चक्रगदाधर॥ ४२॥

चक्र और गदा धारण करनेवाले केशव ! मैंने पतिकी सेवासे जो कुछ भी तप प्राप्त किया है, उस दुर्लभ तपोबलसे तुम्हें शाप दे रही हूँ॥ ४२॥

यस्मात् परस्परं घ्नन्तो ज्ञातयः कुरुपाण्डवाः।
उपेक्षितास्ते गोविन्द तस्माज्ज्ञातीन् वधिष्यसि॥ ४३॥

गोविन्द ! तुमने आपसमें मार-काट मचाते हुए कुटुम्बी कौरवों और पाण्डवोंकी उपेक्षा की है; इसलिये तुम अपने भाई-बन्धुओंका भी विनाश कर डालोगे॥ ४३॥

त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन।
हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनेचरः॥ ४४॥
अनाथवदविज्ञातो लोकेष्वनभिलक्षितः।
कुत्सितेनाभ्युपायेन निधनं समवाप्स्यसि॥ ४५॥

मधुसूदन ! आजसे छत्तीसवाँ वर्ष उपस्थित होनेपर तुम्हारे कुटुम्बी, मन्त्री और पुत्र सभी आपसमें लड़कर मर जायँगे। तुम सबसे अपरिचित और लोगोंकी आँखोंसे ओझल होकर अनाथके समान वनमें विचरोगे और किसी निन्दित उपायसे मृत्युको प्राप्त होओगे॥ ४४-४५॥

तवाप्येवं हतसुता निहतज्ञातिबान्धवाः।
स्त्रियः परिपतिष्यन्ति यथैता भरतस्त्रियः॥ ४६॥

इन भरतवंशकी स्त्रियोंके समान तुम्हारे कुलकी स्त्रियाँ भी पुत्रों तथा भाई-बन्धुओंके मारे जानेपर इसी तरह सगे-सम्बन्धियोंकी लाशोंपर गिरेंगी॥ ४६॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं घोरं वासुदेवो महामनाः।
उवाच देवीं गान्धारीमीषदभ्युत्स्मयन्निव॥ ४७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! वह घोर वचन सुनकर महामनस्वी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने कुछ मुस्कराते हुए-से गान्धारीदेवीसे कहा—॥ ४७॥

जानेऽहमेतदप्येवं चीर्णं चरसि क्षत्रिये।
दैवादेव विनश्यन्ति वृष्णयो नात्र संशयः॥ ४८॥

'क्षत्राणी ! मैं जानता हूँ, यह ऐसा ही होनेवाला है। तुम तो किये हुएको ही कर रही हो। इसमें संदेह नहीं कि वृष्णिवंशके यादव दैवसे ही नष्ट होंगे॥ ४८॥

संहर्ता वृष्णिचक्रस्य नान्यो मद् विद्यते शुभे।
अवध्यास्ते नरैरन्यैरपि वा देवदानवैः॥ ४९॥
परस्परकृतं नाशमतः प्राप्स्यन्ति यादवाः।

'शुभे ! वृष्णिकुलका संहार करनेवाला मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है। यादव दूसरे मनुष्यों तथा देवताओं और दानवोंके लिये भी अवध्य हैं; अतः आपसमें ही लड़कर नष्ट होंगे'॥ ४९½॥

इत्युक्तवति दाशार्हे पाण्डवास्त्रस्तचेतसः।
बभूवुर्भृशसंविग्ना निराशाश्चापि जीविते॥ ५०॥

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर पाण्डव मन-ही-मन भयभीत हो उठे। उन्हें बड़ा उद्वेग हुआ। वे सब-के-सब अपने जीवनसे निराश हो गये॥ ५०॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीशापदाने पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीका शापदानविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥२५॥

(श्राद्धपर्व)

षड्विंशोऽध्यायः

प्राप्त अनुस्मृति विद्या और दिव्य दृष्टिके प्रभावसे युधिष्ठिरका महाभारतयुद्धमें मारे गये लोगोंकी संख्या और गतिका वर्णन तथा युधिष्ठिरकी आज्ञासे सबका दाह-संस्कार

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारि मा च शोके मनः कृथाः ।
तवैव ह्यपराधेन कुरवो निधनं गताः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—गान्धारी ! उठो, उठो । शोकमें मनको न डुबाओ । तुम्हारे ही अपराधसे कौरवोंका विनाश हुआ है ॥ १ ॥

यत् त्वं पुत्रं दुरात्मानमीर्षुमत्यन्तमानिनम् ।
दुर्योधनं पुरस्कृत्य दुष्कृतं साधु मन्यसे ॥ २ ॥
निष्ठुरं वैरपुरुषं वृद्धानां शासनातिगम् ।
कथमात्मकृतं दोषं मय्याधातुमिहेच्छसि ॥ ३ ॥

तुम्हारा पुत्र दुर्योधन दुरात्मा, दूसरोंसे ईर्ष्या एवं जलन रखनेवाला और अत्यन्त अभिमानी था । दुष्कर्मपरायण, निष्ठुर, वैरका मूर्तिमान् स्वरूप और बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला था । तुमने उसको अगुआ बनाकर जो अपराध किया है, उसे क्या तुम अच्छा समझती हो ? अपने ही किये हुए दोषको यहाँ मुझपर कैसे लादना चाहती हो ! ॥

मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति ।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ ४ ॥

यदि कोई मनुष्य किसी मरे हुए सम्बन्धी, नष्ट हुई वस्तु अथवा बीती हुई बातके लिये शोक करता है तो वह एक दुःखसे दूसरे दुःखका भागी होता है, इस प्रकार वह दो अनर्थोंको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

तपोर्थीयं ब्राह्मणी धत्त गर्भं
गौर्वोढारं धावितारं तुरङ्गी ।
शूद्रा दासं पशुपालं च वैश्या
वधार्थीयं त्वद्विधा राजपुत्री ॥ ५ ॥

ब्राह्मणी तपके लिये, गाय बोझ ढोनेके लिये, घोड़ी वेगसे दौड़नेके लिये, शूद्रा सेवाके लिये, वैश्यकन्या पशु-पालन करनेके लिये और तुम-जैसी राजपुत्री युद्धमें लड़कर मरनेके लिये पुत्र पैदा करती है ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य पुनरुक्तं वचोऽप्रियम् ।
तूष्णीं बभूव गान्धारी शोकव्याकुललोचना ॥ ६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! श्रीकृष्णका दुबारा कहा हुआ वह अप्रिय वचन सुनकर गान्धारी चुप हो गयी । उसके नेत्र शोकसे व्याकुल हो उठे थे ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्रस्तु राजर्षिर्निगृह्याबुद्धिजं तमः ।
पर्यपृच्छत धर्मज्ञो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥

उस समय धर्मज्ञ राजर्षि धृतराष्ट्रने अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले शोक और मोहको रोककर धर्मराज युधिष्ठिरसे पूछा—॥

जीवतां परिमाणज्ञः सैन्यानामसि पाण्डव ।
हतानां यदि जानीषे परिमाणं वदस्व मे ॥ ८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! तुम जीवित सैनिकोंकी संख्याके जानकार तो हो ही । यदि मरे हुओंकी संख्या जानते हो तो मुझे बताओ॥

युधिष्ठिर उवाच

दशायुतानामयुतं सहस्राणि च विंशतिः ।
कोट्यः षष्टिश्च षट् चैव ह्यस्मिन् राजन् मृधे हताः॥९॥

युधिष्ठिर बोले—राजन् ! इस युद्धमें एक अरब, छाछठ करोड़, बीस हजार योद्धा मारे गये हैं ॥ ९ ॥

अलक्षितानां वीराणां सहस्राणि चतुर्दश ।
दश चान्यानि राजेन्द्र शतं षष्टिश्च पञ्च च ॥ १० ॥

राजेन्द्र ! इनके अतिरिक्त चौबीस हजार एक सौ पैंसठ सैनिक लापता हैं ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच

युधिष्ठिर गतिं कां ते गताः पुरुषसत्तम ।
आचक्ष्व मे महाबाहो सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—पुरुषप्रवर ! महाबाहु युधिष्ठिर ! तुम तो मुझे सर्वज्ञ जान पड़ते हो; अतः यह तो बताओ कि 'वे मरे हुए सैनिक किस गतिको प्राप्त हुए हैं ?' ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच

यैर्हुतानि शरीराणि हृष्टैः परमसंयुगे ।
देवराजसमाँल्लोकान् गतास्ते सत्यविक्रमाः ॥ १२ ॥

युधिष्ठिरने कहा—जिन लोगोंने इस महासमरमें बड़े हर्ष और उत्साहके साथ अपने शरीरोंकी आहुति दी है, वे सत्यपराक्रमी वीर देवराज इन्द्रके समान लोकोंमें गये हैं ॥

ये त्वहृष्टेन मनसा मर्तव्यमिति भारत ।
युध्यमाना हताः संख्ये गन्धर्वैः सह संगताः ॥ १३ ॥

भारत ! जो अप्रसन्न मनसे मरनेका निश्चय करके रण-क्षेत्रमें जूझते हुए मारे गये हैं, वे गन्धर्वोंके साथ जा मिले हैं॥

ये च संग्रामभूमिष्ठा याचमानाः पराङ्मुखाः ।
शस्त्रेण निधनं प्राप्ता गतास्ते गुह्यकान् प्रति ॥ १४ ॥

जो संग्राम-भूमिमें खड़े हो प्राणोंकी भीख माँगते हुए

युद्धसे विमुख हो गये थे; उनमेंसे जो लोग शस्त्रद्वारा मारे गये हैं, वे गुह्यकलोकोंमें गये हैं ॥ १४ ॥

पात्यमानाः परैर्ये तु हीयमाना निरायुधाः ।
ह्रीनिषेवा महात्मानः परानभिमुखा रणे ॥ १५ ॥
छिद्यमानाः शितैः शस्त्रैः क्षत्रधर्मपरायणाः ।
गतास्ते ब्रह्मसदनं न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ १६ ॥

जिन महामनस्वी पुरुषोंको शत्रुओंने गिरा दिया था, जिनके पास युद्ध करनेका कोई साधन नहीं रह गया था, जो शस्त्रहीन हो गये थे और उस अवस्थामें भी लज्जाशील होनेके कारण जो रणभूमिमें निरन्तर शत्रुओंका सामना करते हुए ही तीखे अस्त्र-शस्त्रोंसे कट गये, वे क्षत्रियधर्मपरायण पुरुष ब्रह्मलोकमें गये हैं, इस विषयमें मेरा कोई दूसरा विचार नहीं है ॥ १५-१६ ॥

ये त्वत्र निहता राजन्नन्तरायोधनं प्रति ।
यथाकथंचित् पुरुषास्ते गतास्तूत्तरान् कुरून्॥ १७ ॥

राजन् ! इनके सिवा, जो लोग इस युद्धकी सीमाके भीतर रहकर जिस किसी भी प्रकारसे मार डाले गये हैं, वे उत्तर कुरुदेशमें जन्म धारण करेंगे ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

केन ज्ञानबलेनैवं पुत्र पश्यसि सिद्धवत् ।
तन्मे वद महाबाहो श्रोतव्यं यदि वै मया ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—बेटा ! किस ज्ञानबलसे तुम इस तरह सिद्ध पुरुषोंके समान सब कुछ प्रत्यक्ष देख रहे हो । महाबाहो ! यदि मेरे सुनने योग्य हो तो बताओ ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

निदेशाद् भवतः पूर्वं वने विचरता मया ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सम्प्राप्तोऽयमनुग्रहः ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर बोले—महाराज ! पहले आपकी आज्ञासे जब मैं वनमें विचरता था, उन्हीं दिनों तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे मुझे एक महात्माका इस रूपमें अनुग्रह प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥

देवर्षिर्लोमशो दृष्टस्ततः प्राप्तोऽस्म्यनुस्मृतिम् ।
दिव्यं चक्षुरपि प्राप्तं ज्ञानयोगेन वै पुरा ॥ २० ॥

तीर्थयात्राके समय देवर्षि लोमशका दर्शन हुआ था । उन्हींसे मैंने यह अनुस्मृतिविद्या प्राप्त की थी । इसके सिवा, पूर्वकालमें ज्ञानयोगके प्रभावसे मुझे दिव्यदृष्टि भी प्राप्त हो गयी थी ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अनाथानां जनानां च सनाथानां च भारत ।
कच्चित् तेषां शरीराणि धक्ष्यसे विधिपूर्वकम्॥ २१ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—भारत ! यहाँ जो अनाथ और सनाथ योद्धा मरे पड़े हैं, क्या तुम उनके शरीरोंका विधिपूर्वक दाह-संस्कार करा दोगे ? ॥ २१ ॥

न येषामस्ति संस्कर्ता न च येऽत्राहिताग्नयः ।
वयं च कस्य कुर्याम बहुत्वात् तात कर्मणाम् ॥२२ ॥

जिनका कोई संस्कार करनेवाला नहीं है तथा जो अग्निहोत्री नहीं रहे हैं, उनका भी प्रेतकर्म तो करना ही होगा, तात ! यहाँ तो बहुतोंके अन्त्येष्टि-कर्म करने हैं, हम किस-किसका करें ? ॥ २२ ॥

यान् सुपर्णाश्च गृध्राश्च विकर्षन्ति यतस्ततः ।
तेषां तु कर्मणा लोका भविष्यन्ति युधिष्ठिर ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर ! जिनकी लाशोंको गरुड़ और गीध इधर-उधर घसीट रहे हैं, उन्हें तो श्राद्धकर्मसे ही शुभलोक प्राप्त होंगे ? ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तो महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आदिदेश सुधर्माणं धौम्यं सूतं च संजयम् ॥ २४ ॥
विदुरं च महाबुद्धिं युयुत्सुं चैव कौरवम् ।
इन्द्रसेनमुखांश्चैव भृत्यान् सूतांश्च सर्वशः ॥ २५ ॥
भवन्तः कारयन्त्वेषां प्रेतकार्याण्यशेषतः ।
यथा चानाथवत् किंचिच्छरीरं न विनश्यति ॥ २६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! राजा धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने सुधर्मा, धौम्य, सारथि संजय, परम बुद्धिमान् विदुर, कुरुवंशी युयुत्सु तथा इन्द्रसेन आदि सेवकों एवं सम्पूर्ण सूतोंको यह आज्ञा दी कि 'आपलोग इन सबके प्रेतकार्य सम्पन्न करावें । ऐसा न हो कि कोई भी लाश अनाथके समान नष्ट हो जाय' ॥ २४-२६ ॥

शासनाद् धर्मराजस्य क्षत्ता सूतश्च संजयः ।
सुधर्मा धौम्यसहित इन्द्रसेनादयस्तथा ॥ २७ ॥
चन्दनागुरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्युत ।
घृतं तैलं च गन्धांश्च क्षौमाणि वसनानि च ॥ २८ ॥
समाहृत्य महार्हाणि दारूणां चैव संचयान् ।
रथांश्च मृदितांस्तत्र नानाप्रहरणानि च ॥ २९ ॥
चिताः कृत्वा प्रयत्नेन यथामुख्यान् नराधिपान् ।
दाहयामासुरव्यग्राः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ३० ॥

धर्मराजके आदेशसे विदुरजी, सारथि संजय, सुधर्मा, धौम्य तथा इन्द्रसेन आदिने चन्दन और अगरकी लकड़ी कालीयक, घी, तेल, सुगन्धित पदार्थ और बहुमूल्य रेशमी वस्त्र आदि वस्तुएँ एकत्र कीं, लकड़ियोंका संग्रह किया, टूटे हुए रथों तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको भी एकत्र कर लिया । फिर उन सबके द्वारा प्रयत्नपूर्वक कई चिताएँ बनाकर जेठे-छोटेके क्रमसे सभी राजाओंका शास्त्रीय विधिके अनुसार उन्होंने शान्तभावसे दाह-संस्कार सम्पन्न कराया ॥ २७-३० ॥

दुर्योधनं च राजानं भ्रातॄंश्चास्य महारथान् ।
शल्यं शलं च राजानं भूरिश्रवसमेव च ॥ ३१ ॥
जयद्रथं च राजानमभिमन्युं च भारत ।
दौःशासनिं लक्ष्मणं च धृष्टकेतुं च पार्थिवम् ॥ ३२ ॥
बृहन्तं सोमदत्तं च सृंजयांश्च शताधिकान् ।
राजानं क्षेमधन्वानं विराटद्रुपदौ तथा ॥ ३३ ॥
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
युधामन्युं च विक्रान्तमुत्तमौजसमेव च ॥ ३४ ॥
कौसल्यं द्रौपदेयांश्च शकुनिं चापि सौबलम् ।
अचलं वृषकं चैव भगदत्तं च पार्थिवम् ॥ ३५ ॥
कर्णं वैकर्तनं चैव सहपुत्रममर्षणम् ।
केकयांश्च महेष्वासांस्त्रिगर्तांश्च महारथान् ॥ ३६ ॥
घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं बकभ्रातरमेव च ।
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं जलसन्धं च पार्थिवम् ॥ ३७ ॥
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् पार्थिवांश्च सहस्रशः ।
घृतधाराहुतैर्दीप्तैः पावकैः समदाहयन् ॥ ३८ ॥

राजा दुर्योधन, उनके निन्यानबे महारथी भाई, राजा शल्य, शल, भूरिश्रवा, राजा जयद्रथ, अभिमन्यु, दुःशासन-पुत्र, लक्ष्मण, राजा धृष्टकेतु, बृहन्त, सोमदत्त, सौसे भी अधिक सृंजय वीर, राजा क्षेमधन्वा, विराट, द्रुपद, शिखण्डी, पाञ्चालदेशीय द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, पराक्रमी उत्त-मौजा, कोसलराज बृहद्बल, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, सुबलपुत्र शकुनि, अचल, वृषक, राजा भगदत्त, पुत्रोंसहित अमर्ष-शील वैकर्तन कर्ण, महाधनुर्धर पाँचों केकयराजकुमार, महारथी त्रिगर्त, राक्षसराज घटोत्कच, बकके भाई राक्षस-प्रवर अलम्बुष और राजा जलसंध—इनका तथा अन्य बहुतेरे सहस्रों भूपालोंका घीकी धारासे प्रज्वलित हुई अग्नियोंद्वारा उन लोगोंने दाह-कर्म कराया ॥ ३१—३८ ॥

पितृमेधाश्च केषांचित् प्रावर्तन्त महात्मनाम् ।
सामभिश्चाप्यगायन्त तेऽन्वशोचन्त चापरैः ॥ ३९ ॥

किन्हीं महामनस्वी वीरोंके लिये पितृमेध (श्राद्धकर्म) भी आरम्भ कर दिये गये । कुछ लोगोंने वहाँ सामगान किया तथा कितने ही मनुष्योंने वहाँ मरे हुए विभिन्न जनोंके लिये महान् शोक प्रकट किया ॥ ३९ ॥

साम्नामृचां च नादेन स्त्रीणां च रुदितस्वनैः ।
कश्मलं सर्वभूतानां निशायां समपद्यत ॥ ४० ॥

सामवेदीय मन्त्रों तथा ऋचाओंके घोष और स्त्रियोंके रोनेकी आवाजसे वहाँ रातमें सभी प्राणियोंको बड़ा कष्ट हुआ॥

ते विधूमाः प्रदीप्ताश्च दीप्यमानाश्च पावकाः ।
नभसीवान्वदृश्यन्त ग्रहास्तन्वभ्रसंवृताः ॥ ४१ ॥

उस समय स्वल्प धूमयुक्त, प्रज्वलित तथा जलायी जाती हुई चिताकी अग्नियाँ आकाशमें सूक्ष्म बादलोंसे ढँके हुए ग्रहोंके समान दिखायी देती थीं ॥ ४१ ॥

ये चाप्यनाथास्तत्रासन् नानादेशसमागताः ।
तांश्च सर्वान् समानाय्य राशीन् कृत्वा सहस्रशः ॥४२॥
चित्वा दारुभिरव्यग्रैः प्रभूतैः स्नेहपाचितैः ।
दाहयामास तान् सर्वान् विदुरो राजशासनात्॥ ४३ ॥

इसके बाद वहाँ अनेक देशोंसे आये हुए जो अनाथ लोग मारे गये, उन सबकी लाशोंको मँगवाकर उनके सहस्रों ढेर लगाये । फिर घी-तेलमें भिगोयी हुई बहुत-सी लकड़ियों-द्वारा स्थिर चित्तवाले लोगोंसे चिता बनाकर उन सबको विदुरजीने राजाकी आज्ञाके अनुसार दग्ध करवा दिया ॥

कारयित्वा क्रियास्तेषां कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गङ्गामभिमुखोऽगमत् ॥ ४४ ॥

इस प्रकार उन सबका दाहकर्म कराकर कुरुराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्रको आगे करके गङ्गाजीकी ओर चले गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि श्राद्धपर्वणि कुरूणामौर्ध्वदेहिके षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत श्राद्धपर्वमें कौरवोंका और्ध्वदैहिक संस्कारविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

सभी स्त्री-पुरुषोंका अपने मरे हुए सम्बन्धियोंको जलाञ्जलि देना, कुन्तीका अपने गर्भसे कर्णके जन्म होनेका रहस्य प्रकट करना तथा युधिष्ठिरका कर्णके लिये शोक प्रकट करते हुए उनका प्रेतकृत्य सम्पन्न करना और स्त्रियोंके मनमें रहस्यकी बात न छिपनेका शाप देना

वैशम्पायन उवाच

ते समासाद्य गङ्गां तु शिवां पुण्यजलोचिताम् ।
ह्रदिनीं च प्रसन्नां च महारूपां महावनाम् ॥ १ ॥
भूषणान्युत्तरीयाणि वेष्टनान्यवमुच्य च ।
ततः पितॄणां भ्रातॄणां पौत्राणां स्वजनस्य च ॥ २ ॥
पुत्राणामार्यकाणां च पतीनां च कुरुस्त्रियः ।
उदकं चक्रिरे सर्वा रुदत्यो भृशदुःखिताः ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! वे युधिष्ठिर आदि सब लोग कल्याणमयी, पुण्यसलिला, अनेक जलकुण्डोंसे सुशोभित, स्वच्छ, विशाल रूपधारिणी तथा तटप्रदेशमें



युद्धमें काम आये हुए वीरोंको उनके सम्बन्धियोंद्वारा जलदान

महान् वनवाली गङ्गाजीके तटपर आकर अपने सारे आभूषण, दुपट्टे तथा पगड़ी आदि उतार डाले और पिताओं, भाइयों, पुत्रों, पौत्रों, स्वजनों तथा आर्य वीरोंके लिये जलाञ्जलि प्रदान की। अत्यन्त दुःखसे रोती हुई कुरुकुलकी सभी स्त्रियोंने भी अपने पिता आदिके साथ-साथ पतियोंके लिये जल अर्पण किये॥

सुहृदां चापि धर्मज्ञाः प्रचक्रुः सलिलक्रियाः।
उदके क्रियमाणे तु वीराणां वीरपत्निभिः॥ ४॥
सूपतीर्था भवद्गङ्गा भूयो विप्रससार च।

धर्मज्ञ पुरुषोंने अपने हितैषी सुहृदोंके लिये भी जलाञ्जलि देनेका कार्य सम्पन्न किया। वीरोंकी पत्नियोंद्वारा जब उन वीरोंके लिये जलाञ्जलि दी जा रही थी, उस समय गङ्गाजीके जलमें उतरनेके लिये बड़ा सुन्दर मार्ग बन गया और गङ्गाका पाट अधिक चौड़ा हो गया॥ ४½॥

तन्महोदधिसंकाशं निरानन्दमनुत्सवम्॥ ५॥
वीरपत्नीभिराकीर्णं गङ्गातीरमशोभत।

महासागरके समान विशाल वह गङ्गातट आनन्द और उत्सवसे शून्य होनेपर भी उन वीर-पत्नियोंसे व्याप्त होनेके कारण बड़ी शोभा पाने लगा॥ ५½॥

ततः कुन्ती महाराज सहसा शोककर्शिता॥ ६॥
रुदती मन्दया वाचा पुत्रान् वचनमब्रवीत्।

महाराज! तदनन्तर कुन्तीदेवी सहसा शोकसे कातर हो रोती हुई मन्द वाणीमें अपने पुत्रोंसे बोलीं—॥ ६½॥

यः स वीरो महेष्वासो रथयूथपयूथपः॥ ७॥
अर्जुनेन जितः संख्ये वीरलक्षणलक्षितः।
यं सूतपुत्रं मन्यध्वं राधेयमिति पाण्डवाः॥ ८॥
यो व्यराजच्च भूमध्ये दिवाकर इव प्रभुः।
प्रत्ययुध्यत वः सर्वान् पुरा यः सपदानुगान्॥ ९॥
दुर्योधनबलं सर्वं यः प्रकर्षन् व्यरोचत।
यस्य नास्ति समो वीर्ये पृथिव्यामपि पार्थिवः॥ १०॥
योऽवृणीत यशः शूरः प्राणैरपि सदा भुवि।
कर्णस्य सत्यसंधस्य संग्रामेष्वपलायिनः॥ ११॥
कुरुध्वमुदकं तस्य भ्रातुरक्लिष्टकर्मणः।
स हि वः पूर्वजो भ्राता भास्करान्मय्यजायत॥ १२॥
कुण्डली कवची शूरो दिवाकरसमप्रभः।

'पाण्डवो! जो महाधनुर्धर वीर रथ-यूथपतियोंका भी यूथपति तथा वीरोचित शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था, जिसे युद्धमें अर्जुनने परास्त किया है तथा जिसे तुमलोग सूतपुत्र एवं राधापुत्रके रूपमें मानते-जानते हो, जो सेनाके मध्यभागमें भगवान् सूर्यके समान प्रकाशित होता था, जिसने पहले सेवकोंसहित तुम सब लोगोंका अच्छी तरह सामना किया था, जो दुर्योधनकी सारी सेनाको अपने पीछे खींचता हुआ बड़ी शोभा पाता था, बल और पराक्रममें जिसकी समानता करनेवाला इस भूतलपर दूसरा कोई राजा नहीं है, जिस शूरवीरने अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर भी भूमण्डलमें सदा यशका ही उपार्जन किया है, संग्राममें कभी पीठ न दिखानेवाले और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अपने उस सत्यप्रतिज्ञ भ्राता कर्णके लिये भी तुमलोग जल-दान करो। वह तुमलोगोंका बड़ा भाई था। भगवान् सूर्यके अंशसे वह वीर मेरे ही गर्भसे उत्पन्न हुआ था। जन्मके साथ ही उस शूरवीरके शरीरमें कवच और कुण्डल शोभा पाते थे। वह सूर्यदेवके समान ही तेजस्वी था॥ ७—१२½॥

श्रुत्वा तु पाण्डवाः सर्वे मातुर्वचनमप्रियम्॥ १३॥
कर्णमेवानुशोचन्तो भूयः क्लान्ततराभवन्।

माताका यह अप्रिय वचन सुनकर समस्त पाण्डव कर्णके लिये ही बारंबार शोक करते हुए अत्यन्त कष्टमें पड़ गये॥

ततः स पुरुषव्याघ्रः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १४॥
उवाच मातरं वीरो निःश्वसन्निव पन्नगः।

तदनन्तर पुरुषसिंह वीर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर सर्पके समान लंबी साँस खींचते हुए अपनी मातासे बोले—॥ १४½॥

यः शरोर्मिर्ध्वजावर्तो महाभुजमहाग्रहः॥ १५॥
तलशब्दानुनदितो महारथमहाह्रदः।
यस्येषुपातमासाद्य नान्यस्तिष्ठेद् धनंजयात्॥ १६॥
कथं पुत्रो भवत्याः स देवगर्भः पुराभवत्।

'माँ! जो बड़े-बड़े महारथियोंको डुबो देनेके लिये अत्यन्त गहरे जलाशयके समान थे, बाण ही जिनकी लहर, ध्वजा भँवर, बड़ी-बड़ी भुजाएँ महान् ग्राह और हथेलीका शब्द ही गम्भीर गर्जन था, जिनके बाणोंके गिरनेकी सीमामें आकर अर्जुनके सिवा दूसरा कोई वीर नहीं टिक सकता था, वे सूर्यकुमार तेजस्वी कर्ण पूर्वकालमें आपके पुत्र कैसे हुए?॥

यस्य बाहुप्रतापेन तापिताः सर्वतो वयम्॥ १७॥
तमग्निमिव वस्त्रेण कथं छादितवत्यसि।

'जिनकी भुजाओंके प्रतापसे हम सब ओरसे संतप्त रहते थे, कपड़ेमें ढकी हुई आगके समान उन्हें अबतक आपने कैसे छिपा रक्खा था?॥ १७½॥

यस्य बाहुबलं नित्यं धार्तराष्ट्रैरुपासितम्॥ १८॥
उपासितं यथास्माभिर्बलं गाण्डीवधन्वनः।

'धृतराष्ट्रके पुत्रोंने सदा उन्हींके बाहुबलका भरोसा कर रक्खा था, जैसे कि हमलोगोंने गाण्डीवधारी अर्जुनके बलका आश्रय लिया था॥ १८½॥

भूमिपानां च सर्वेषां बलं बलवतां वरः॥ १९॥
नान्यः कुन्तीसुतात् कर्णादगृह्णाद् रथिनां रथी।

'कुन्तीपुत्र कर्णके सिवा दूसरा कोई रथी ऐसा बड़ा बलवान् नहीं हुआ है, जिसने समस्त राजाओंकी सेनाको रोक दिया हो॥

स नः प्रथमजो भ्राता सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २० ॥
असूत तं भवत्यग्रे कथमद्भुतविक्रमम् ।

'वे समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण क्या सचमुच हमारे बड़े भाई थे ? आपने पहले उन अद्भुत पराक्रमी वीरको कैसे उत्पन्न किया था ? ॥ २०½ ॥

अहो भवत्या मन्त्रस्य गूहनेन वयं हताः ॥ २१ ॥
निधनेन हि कर्णस्य पीडितास्तु सबान्धवाः ।

'अहो ! आपने इस गूढ़ रहस्यको छिपाकर हमलोगोंको मार डाला । कर्णकी मृत्युसे भाइयोंसहित हमें बड़ी पीड़ा हो रही है ॥ २१½ ॥

अभिमन्योर्विनाशेन द्रौपदेयवधेन च ॥ २२ ॥
पञ्चालानां विनाशेन कुरूणां पतनेन च ।
ततः शतगुणं दुःखमिदं मामस्पृशद् भृशम् ॥ २३ ॥

'अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र और पाञ्चालोंके विनाशसे तथा कुरुकुलके इस पतनसे हमें जितना दुःख हुआ था, उससे सौ गुना यह दुःख इस समय मुझे अत्यन्त व्यथित कर रहा है ॥ २२-२३ ॥

कर्णमेवानुशोचामि दह्याम्यग्नाविवाहितः ।
नेह स्म किंचिदप्राप्यं भवेदपि दिवि स्थितम् ॥ २४ ॥
न चेदं वैशसं घोरं कौरवान्तकरं भवेत् ।

'अब तो मैं केवल कर्णके ही शोकमें डूब गया हूँ और इस तरह जल रहा हूँ, मानो मुझे किसीने जलती आगमें रख दिया हो । यदि पहले ही यह बात मुझे मालूम हो गयी होती तो कर्णको पाकर हमारे लिये इस जगत्‌में कोई स्वर्गीय वस्तु भी अलभ्य नहीं होती तथा कुरुकुलका अन्त कर देनेवाला यह घोर संग्राम भी नहीं हुआ होता' ॥ २४½ ॥

एवं विलप्य बहुलं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २५ ॥
व्यरुदच्छनकै राजंश्चकारास्योदकं प्रभुः ।
ततो विनेदुः सहसा स्त्रियस्ताः खलु सर्वशः ॥ २६ ॥
अभितो याः स्थितास्तत्र तस्मिन्नुदककर्मणि ।

राजन् ! इस प्रकार बहुत विलाप करके धर्मराज युधिष्ठिर फूट-फूटकर रोने लगे । रोते-ही-रोते उन्होंने धीरे-धीरे कर्णके लिये जलदान किया । यह सब सुनकर वहाँ एकत्र हुई सारी स्त्रियाँ, जो वहाँ जलाञ्जलि देनेके लिये सब ओर खड़ी थीं, सहसा जोर-जोरसे रोने लगीं ॥ २५-२६½ ॥

तत आनाययामास कर्णस्य सपरिच्छदाः ॥ २७ ॥
स्त्रियः कुरुपतिर्धीमान् भ्रातुः प्रेम्णा युधिष्ठिरः ।
स ताभिः सह धर्मात्मा प्रेतकृत्यमनन्तरम् ॥ २८ ॥
चकार विधिवद् धीमान् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

तदनन्तर बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिरने भाईके प्रेमसे कर्णकी स्त्रियोंको परिवारसहित बुलवा लिया और उन सबके साथ रहकर उन धर्मात्मा बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरने विधिपूर्वक कर्णका प्रेतकृत्य सम्पन्न किया ॥ २७-२८½ ॥

पापेनासौ मया श्रेष्ठो भ्राता ज्ञातिर्निपातितः ।
अतो मनसि यद् गुह्यं स्त्रीणां तन्न भविष्यति ॥ २९ ॥

तदनन्तर वे बोले—'मुझ पापीने इस रहस्यको न जाननेके कारण अपने बड़े भाईको मरवा दिया; अतः आजसे स्त्रियोंके मनमें कोई गुप्त रहस्य नहीं छिपा रह सकेगा' ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा स तु गङ्गाया उत्तताराकुलेन्द्रियः ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैर्गङ्गातीरमुपेयिवान् ॥ ३० ॥

ऐसा कहकर व्याकुल इन्द्रियोंवाले राजा युधिष्ठिर गङ्गाजीके जलसे निकले और समस्त भाइयोंके साथ तटपर आये॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि श्राद्धपर्वणि कर्णगूढजत्वकथने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत श्राद्धपर्वमें कर्णके जन्मके गूढ़ रहस्यका कथनविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

स्त्रीपर्व सम्पूर्णम्

	अनुष्टुप्	बड़े श्लोक	बड़े श्लोकोंको अनुष्टुप् माननेपर	कुल
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	८२२	(५)	६॥।=	८२८॥।=
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	१	...	....	१
		स्त्रीपर्वकी कुल श्लोकसंख्या		८२९॥।=